मेरी प्रिय कथाएं

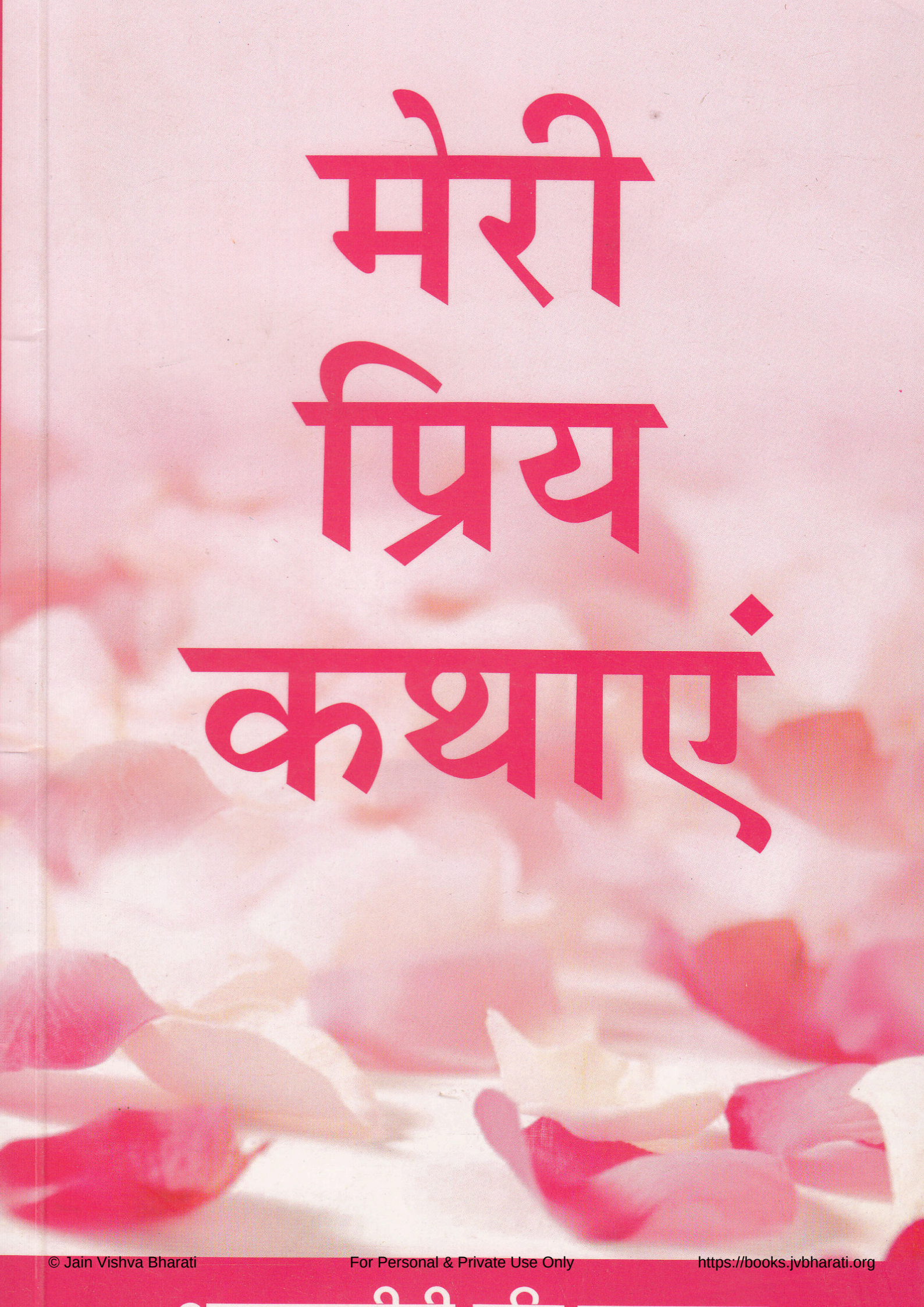

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मेरी प्रिय कथाएं

आगममनीषी मुनि दुलहराज

संपादक
शासनश्री मुनि राजेन्द्रकुमार

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

काशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२२०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

जैन विश्व भारती, लाडनूं

जन्य : स्व. पूरादेवी धर्मपत्नी स्व. मनसुखलालजी छाजेड़ की पुण्यस्मृति में
सुपुत्र हनुमानमल/गवरादेवी
सुपौत्र सुरेन्द्र/निर्मला, रवीन्द्र/मोनिका, वीरेन्द्र छाजेड़ द्वारा
(रासीसर-जलगांव)

म संस्करण : जनवरी २०१२

य :

क : पायोराईट प्रिंट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

MERI PRIYA KATHĀYE

Āgammanishi Muni Dulaharaj

Editor
Shashan Shri Muni Rajendra Kumar

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ublishers :

in Vishva Bharati
st : Ladnun - 341 306
st. : Nagaur (Raj.)
one No. (01581) 222080,224671
mail : jainvishvabharati@yahoo.com

Jain Vishva Bharati, Ladnun

ourtery : In the memory of Late Puradevi W/o Late Mansukhlalji Chhajer
(Son) Hanumanmal/Gavra Devi
(Grandsons) Surendra/Nirmala, Ravindra/Monika, Virendra Chhajer.
(Rasisar-Jalgaon)

lition : 2012

ice :

inted by :

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

शुभाशंसा

साहित्य-जगत् में कथा-साहित्य का अपना महत्त्व है। उसको पढ़ने से पाठक को एक सुन्दर प्रेरणा भी मिल सकती है। उससे वह अपने वक्तृत्व को भी समृद्ध और रोचक बना सकता है।

मुनिश्री दुलहराजजी स्वामी आगममनीषी थे। जीवन के अन्तिम वर्ष में वे तेरापंथ धर्मसंघ की सप्तसदस्यीय बहुश्रुत परिषद् के सदस्य मनोनीत किए गए। उन्होंने लम्बे समय तक आचार्यश्री महाप्रज्ञ का सान्निध्य साधा। उनकी पुस्तक **'मेरी प्रिय कथाएं'** के संपादन में शासनश्री मुनिश्री राजेन्द्रकुमारजी स्वामी और साहित्य समिति के सदस्य मुनि जितेन्द्रकुमारजी का श्रमदान रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक पाठकों को सुन्दर प्रेरणा प्रदान करने में सक्षम बने।

महेन्द्रगढ़ (मेवाड़)
२२ नवम्बर २०११

आचार्य महाश्रमण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

संपादकीय

कथाएं अथवा कहानियां मानवीय प्रेरणाओं, भावनाओं, संवेदनाओं, उदात्त आदर्शों और सद्संस्कारों को अभिव्यक्त करने वाली होती हैं। उनसे मनुष्य न केवल प्रेरणा ही पाता है, मानवीय संवेदनाओं का भी अनुभव करता है। आदर्श पुरुषों का उदात्त चरित्र उसके लिए अनुकरणीय-समादरणीय बनता है और जीवन में उन सद्संस्कारों का समावेश होता है, जो जीवन निर्माण के हेतु बनते हैं।

भारतीय साहित्य में कथाओं और कहानियों का वही स्थान है जो शरीर में प्राणधरा का है। इसलिए कथाओं का शाश्वत मूल्य रहा है। आज भी लोकमानस में कथाओं के प्रति वही रुझान, सम्मान और आकर्षण देखा जा सकता है। कथाएं अपने आपमें रोचक, सरस, प्रेरणाप्रद और मन को रंजित करने वाली होती हैं। कथा साहित्य ही ऐसा साहित्य है जिसे बाल, तरुण और वृद्ध सभी रुचि से पढ़ते हैं। आज भी गांव की चौपालों में बुजुर्ग लोग बच्चों को कहानी सुनाते हुए देखे जा सकते हैं। गूढ़ सिद्धान्त अथवा दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए कथाओं की भी अपनी अहंभूमिका होती है। उससे विषय सहज, सरल, सुबोध और सुगम्य हो जाता है।

कथामनीषियों ने समय-समय पर कथालेखन कर कथा-साहित्य को समृद्ध किया है। कुछ कथाएं काल्पनिक होती हैं तो कुछ यथार्थ। कुछ कथाएं शौर्य और वीरत्व रस से परिपूर्ण होती हैं तो कुछ मस्तिष्क को झंकृत करने वाली उदात्त चरित्रों से व्याख्यायित होती हैं। कुछ कथाएं ऐतिहासिक होती हैं तो कुछ जीवन को सद्संस्कारों से सुवासित करने वाली होती हैं। कुछ आगमिक होती है तो कुछ लोक-प्रचलित कथाएं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आगममनीषी मुनिश्री दुलहराजजी स्वामी को मैं कथाकार तो नहीं कह सकता, किन्तु वे आगममनीषी अवश्य थे। वे तेरापंथ धर्मसंघ के ख्यातनामा, वरेण्य, विद्वान् और वरिष्ठ सन्त थे। उनमें चिन्तन की प्रबुद्धता, लेखन में कुशलता, बोलने में प्रौढ़ता और वाणी में कवित्व झलकता था। वे मनोविनोदी थे तो गंभीर भी थे। उनकी अजस्र लेखनी से अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ। आचार्य महाप्रज्ञ की सैकड़ों पुस्तकें उनके हस्तस्पर्श से सम्पादित हुईं। आचार्य महाप्रज्ञ ने उनके सम्पादन-कौशल से मुग्ध होकर कहा थाह्नयदि मुझे मुनि दुलहराजजी जैसे सम्पादक नहीं मिलते तो मेरा साहित्य इस रूप में जनता के सामने नहीं आता। इसका सारा श्रेय मुनि दुलहराजजी को है।

उन्होंने अनेक विधाओं में साहित्य धारा को प्रवाहित किया। विशेषकर उनका ज्यादा ध्यान आगमों पर केन्द्रित रहा। इसके साथ-साथ गुजराती उपन्यासों का हिन्दी रूपान्तरण, कवितालेखन तथा निबन्ध लेखन का कार्य भी उनकी रुचि का विषय था।

१९ जनवरी २०१० (वि.सं. २०६७ पौष पूर्णिमा), श्रीडूंगरगढ़ में उनका आकस्मिक चिरप्रयाण हो गया। उसके पश्चात् मैंने उनकी हस्तलिखित प्रतियों, डायरियों आदि को संभाला। उनमें मुझे वह प्राप्त हुआ जो मेरे लिए अज्ञात था। डायरियों में लिखित कथाएं कुछ नवीनताओं को लिए हुई थीं। कुछ कथाएं तो हमने उनके मुख से कई बार सुनी भी थी। अनेक कथाएं जैन भारती और प्रेक्षाध्यान आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी देखने को मिली। मन में स्फुरणा हुई, क्यों नहीं इन कथाओं को प्रकाश में लाया जाए? मुनि जितेन्द्रकुमारजी ने मुझे इस कार्य के लिए उत्प्रेरित किया और अपना सर्वस्व वह सहयोग भी दिया, जो मुझे अपेक्षित था। उसी के आधार पर हम दोनों की संयुक्त संयोजना से **'मेरी प्रिय कथाएं'** पुस्तक का कार्य संपन्न हुआ।

काश! आज यदि आगममनीषी मुनिश्री दुलहराजजी विद्यमान होते तो हम दोनों द्वारा कृत कार्य को देखकर कितनी प्रसन्नता प्रकट करते! भूमिका के रूप में अपने विचारों को भी लिखते। किन्तु जो अतीत बन चुके हैं वे हमारे लिए वर्तमान कब बन सकते हैं? उनकी स्मृति ही हमारे लिए वर्तमान है, प्रत्यक्ष है, अन्तर् अनुभूति है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मैं आचार्य महाश्रमण के प्रति श्रद्धानत, विनयावनत हूं जिन्होंने एक वरिष्ठ संतों को उचित सम्मान दिया तथा पुस्तक के प्रति अपनी शुभाशंसा लिखकर भावांजलि अर्पित की।

अन्त में मैं मंगलकामना करता हूं कि **'मेरी प्रिय कथाएं'** सभी सुधी पाठकों के लिए प्रिय और समादरणीय बने। यदि ऐसा हो तो मैं अपना पुरुषार्थ और समयनियोजन सार्थक मानूंगा और अपने को कृतकृत्य और पुण्यात्मा अनुभव करूंगा...इसी मंगलकामना और शुभभावना के साथ....शुभं भूयात् सर्वेषाम्।

केलवा (राजसमन्द) **शासनश्री मुनि राजेन्द्रकुमार**

९ नवम्बर २०११

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अनुक्रम

१. दण्ड का भागी कौन?
२. अध्यवसायों का खेल
३. चार मित्र
४. स्त्रीचरित्र
५. लोभ का कटुक फल
६. लोभ में लाभ कहां?
७. मुद्गशैल
८. चिलातपुत्र
९. चेतन ही क्यों, जड़ भी नाचता है
१०. सोने के यव
११. धन : अनर्थ का मूल
१२. वन्दनीय कौन?
१३. अभयकुमार का चातुर्य
१४. मुनि मनक
१५. अभयकुमार की दूरदर्शिता
१६. रहस्य जो नहीं खुला
१७. रत्नवणिक्
१८. एक प्रश्न
१९. मिथ्या आग्रह
२०. दशार्णभद्र का गर्व
२१. विश्वास किसका?
२२. प्रतिशोध की ज्वाला

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

. आर्य कालक ५०
. शिरच्छेद ५१
. गुणग्राहिता ५६
. परीक्षा ५८
. विनिमय ५९
. चालाकी ६०
. सागरचन्द और कमलामेला ६५
. व्रतनिष्ठा ६८
. दो रूपक ७३
. ईर्ष्या का फल ७४
. भक्ति और बहुमान ७६
. काकिणी की याचना ७७
. आसुरी वृत्ति ७८
. कायोत्सर्ग का प्रभाव ७९
. इच्छाशक्ति का चमत्कार ८४
. कर्ण की उदारता ८५
. सन्त बेला ८६
. सफलता के सूत्र ८७
. एका ८८
. देर है, अन्धेर नहीं ८९
. युद्ध में पीछे नहीं ९०
. ईर्ष्या का दुष्परिणाम ९०
. आदत की लाचारी ९१
. मंत्र भी अधिकार पाकर ही काम करता है ९१
. गरीब कौन? ९२
. शांति कैसे? ९२
. चौधरी कौन हो सकता है? ९२
. श्रुत का महत्त्व ९३

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

५१. अज्ञानी की संगत भयंकर होती है
५२. को रुक्?
५३. जेल जाने की इच्छा
५४. राजा कौन हो सकता है?
५५. हृदय परिवर्तन
५६. गुरु का महत्त्व
५७. हम खल नहीं है
५८. शोधप्रवृत्ति कैसे?
५९. छोड़ना सीखो
६०. स्वयं भिखारी क्या देगा?
६१. मछलियां बनीं कमल के फूल
६२. पंडिताई सब जगह काम नहीं आती
६३. चार ग्रंथों का सार
६४. भाई की रिहाई क्यों?
६५. आनन्दघन

गाथा महावीर की

१. वासना-विजय
२. वेदना-विजय
३. दस स्वप्न
४. पांच अभिग्रह
५. नन्द-उपनन्द
६. नियति
७. गोशाला
८. धर्म चक्रवर्ती
९. नौका में महावीर
१०. चार प्रकार के पुरुष
११. विष क्या है?

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. काम-राग-निवारण का उपाय ११३
३. श्रुत क्यों? ११४
४. श्रुत की वाचना ११५
५. पलिमंथु ११५
६. अहिंसा : व्यावहारिक और पारमार्थिक पहलू ११६
७. चार कारण ११८
८. जं सेयं तं समायरे ११९
९. गौतम की जिज्ञासा : समाधान भगवान का १२०

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. दण्ड का भागी कौन?

लगभग दो सौ वर्ष पुरानी बात है। पंजाब के किसी गांव में प्रव
चालू था। लोग आ-जा रहे थे। बड़े-बूढ़े, नर-नारी, हरिजन-महाजन स
प्रवचन सुनने में लीन थे। एक स्त्री आयी। दूर से ही यथावत् वन्दन कर
ओर बैठ गई। प्रवचन पूरा हुआ। सब अपने-अपने घर की ओर चल प
वह प्रवचनकर्ता मुनि के पास गई और विनम्र शब्दों में बोलीह्न'गुरुदेव! अ
अशरण के शरण हैं, अत्राण के त्राण हैं। विधाता ने मुझे विधवा बना डाल
मेरे भाग्य फूट गए। विधवा नारी को अपने इस समाज में सुख कहां?
दुःखी हूं। धर्म में मेरी रुचि है। सारा समय धर्म-कार्यों में बीते,
अभिलाषा है। परन्तु समाज इसमें भी बाधक बनता है। एक अर्ज है। मेरे
आज आप गोचरी पधारें। भोजन-दान से मुझे कृतार्थ करें।'

गुरुह्न'बहन! सुख-दुःख जीवन की अवस्थाएं हैं। वे बदलती रहती
सुख में अपकर्ष और दुःख में दीनता न आए, यही सुखद जीवन है। व
का विपाक होता है। सुख-दुःख पैदा होते हैं। इसके लिए दूसरों को कोस
अज्ञान है। मैं बूढ़ा हो चला हूं। चल-फिर नहीं सकता। अपने शिष्य
गोचरी भेजूंगा।'

वह वहां से चली गई। उसका नाम सुशीला था। अभी वह पूरे यौ
में प्रवेश ही न कर पायी थी कि क्रूर काल ने उसके पति नरेन्द्र को उ
छीन लिया। वह अकेली थी। उसके इस घर में आने के बाद सास-स
और एक छोटी ननदह्नतीनों चल बसे थे। घर सम्पन्न था, पर अकेली
जीवन दूभर-सा लगने लगा।

गुरु के आदेशानुसार तरुण मुनि छोटे-बड़े सभी घरों में माधुकरी-वृ
से भोजन लेते हुए सुशीला के घर भी आ पहुंचे। मुनि-दर्शन से उसका रो
रोम रोमांचित हो उठा। सविधि भोजन लेने के लिए मुनि से आग्रह कि
यथोचित भोजन ले मुनि जाने लगे। उसने कहाह्न'गुरुदेव! इतनी जल्दी व

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ते हैं? मुझ अभागिन से दो-चार बातें तो कर लें।'

मुनिह्न'अकेली बहन से बात करना मुनि को नहीं कल्पता।'

सुशीलाह्न'किन्तु विधि और अपवाद दोनों साथ-साथ चलते हैं। वह धि ही क्या जिसमें अपवाद न हो? अस्तु, इन तर्कों से मेरा कोई संबंध ं। अपना प्रयोजन आपसे स्पष्ट कर दूं। आप देखते हैं मेरे माथे का यह न्दूर अभी सूखा नहीं है। यौवन की मादकता मुझमें पूर्ण रूप ले रही है। सनाएं उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं। प्रेम अन्धा होता है, वह अवस्था नहीं ता। फिर मेरी अवस्था भी तो उसके अनुकूल है। आपमें भी तरुणाई ाड़ाई ले रही है। बचपन में दीक्षित हो जाने के कारण आप यौवन की ब्द मादकता को कैसे समझ सकते हैं? मैं आपसे प्रणय की याचना करती ं

मुनि अवाक् रह गए। सामने देखा कि घर का द्वार भी बंद है। उन्होंने ाह्न'बहन! अपनी संज्ञा को संभालो। विवेकहीन बातें तुम्हें शोभा नहीं ं। दुःख में व्यक्ति भान भूल जाता है। उसमें हिताहित का ज्ञान मंद हो ता है। संभलो, और अपनी चेतना को बटोरकर मूल स्वरूप में आओ।'

सुशीलाह्न'मुनिवर! आपका उपदेश असामयिक है। जीवन सुख का गार है, लेने वाला चाहिए। आंखों से दिखाई पड़ने वाले सुखों को ड़कर परोक्ष के सुखों की लालसा नगण्य है। ऐहिक सुख इन्द्रिय-सापेक्ष उनका पूर्ण पाक यौवन में होता है। खिलते यौवन को शारीरिक कष्टों में ारना अव्वल दर्जे की मूर्खता है। आप विश्वास करें, मेरा कथन झूठा नहीं ा। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें।'

मुनिह्न'ओह! कितनी विडम्बना? अपनी कुत्सित भावना की पूर्ति के ए सच्ची बात को भी झूठी ठहराने का प्रयत्न करती हो। किन्तु तुम्हें याद ा चाहिए कि मैं मुनि हूं। ब्रह्मचर्य मेरा सर्वस्व है। वह आत्मा का धर्म है। ीर भौतिक है। वह भले ही नष्ट हो जाए, किन्तु आत्म-गुण को मैं लंकित नहीं कर सकता।'

सुशीलाह्न'आप इतने क्यों सकुचाते हैं? यहां मेरे और आपके सिवाय ई तीसरा व्यक्ति नहीं है। बात कोई जान भी नहीं पायेगा और यदि आप कामना पूर्ण नहीं करेंगे तो आप जानते हैं मैं आपके जीवन को कलंकित

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कर दूंगी। आप पर आरोप लगाऊंगी। अभी चिल्लाकर लोगों को इकट्ठा
लूंगी। आप तब क्या करेंगे? आरोप जीवन का अभिशाप है। आप स
और एक बार....'

मुनिह्न'बहन! तुम नहीं जानती, मुनि जीवन और मरण में कोई वि
अन्तर नहीं समझता। आदर्श मृत्यु विशुद्ध जीवन की परिचायिका है।
अप्रतिबद्ध है। आज नहीं तो कल मरना सबको पड़ेगा। फिर जीवन
कलंकित करना तो मूर्खता ही है। मैं तुम्हें फिर समझाए देता हूं, तुम हट
करो, नहीं तो अनिष्ट हो जाएगा।'

किन्तु वह अपने आग्रह पर अड़ी हुई थी। मुनि ने देखा कि वह अ
निश्चय को नहीं बदलती। उन्होंने अपना आत्मबल संभाला और अपने
हाथों से अपनी जीभ को बाहर खींच धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े।

सुशीला हकबका गई। साहस बटोरकर मुनि के पास आयी। छाती
हाथ रखा, नाड़ी देखी, किन्तु प्राण-पखेरू उड़ गए थे। नाड़ी गतिहीन थ
हृदय की धकड़न बन्द हो चुकी थी। उसने सोचाह्न'अब क्या होगा?
मुनि की हत्या? हाय राम! अब मैं क्या करूं? लोग मुझे क्या कहेंगे?
जीवन कैसे बीतेगा? हाय! हाय!! अनर्थ हो गया।'

वह अपने घर के बगीचे में गई। चारों ओर सन्नाटा था। उसने
गड्ढा खोदा। शव को उसमें गाड़कर ऊपर मिट्टी थोप दी। कांपती-कांप
खड़ी हुई।

यह सब कुछ हुआ, किन्तु सुशीला का अन्तर्मन शान्त नहीं हो सक
वह मन ही मन अपने कार्य पर रोने लगी।

शाम हो गई। वृद्ध मुनि शिष्य की प्रतीक्षा में बेचैन बैठे थे। थोड़ी-
खड़खड़ाहट से उन्हें शिष्य के आगमन की आशंका होती। वे लकड़ी
सहारे उठते और नीचे झांककर देखते। किन्तु....

उन्होंने सोचाह्न'अजीब बात है। शिष्य को गए पांच-सात घंटे हो ग
वह नहीं लौटा। क्यों? क्या उसे किसी ने बहका तो नहीं लिया? नहीं, न
वह समझदार है। दूसरों के बहकाने में वह क्यों आए? कहीं दुर्घटनाग्रस्त
नहीं हो गया? कहीं मुनि-व्रतों से डरकर वह भाग तो नहीं गया? नहीं-न
वह कष्ट-सहिष्णु है। मैं उसे जानता हूं। मुझ पर उसका अचल अनुराग

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मुझे छोड़कर जा नहीं सकता। अभी आ जाएगा।' इसी प्रकार सोच रहे कि दो-चार श्रावक वन्दनार्थ आ पहुंचे। उनसे मुनि ने सारी बात कह ाई।

कुछ ही समय में सारे शहर में शिष्य के गायब होने की बात फैल । सभी लोग तलाश में लग गए। इधर-उधर दौड़-धूप की। कोई स्टेशन ओर गया तो कोई आसपास के गांवों में गया। किन्तु सब निराश होकर ट आए।

शिष्य के न मिलने से वृद्ध मुनि को आघात-सा लगा। वे हांफते-कते उठे और खुद उसकी तलाश में चले। दो-चार कदम आगे बढ़े होंगे मूर्च्छित हो गिर पड़े। कुछ देर बाद उन्हें होश आया। उन्होंने देखा, ष्य तब तक भी नहीं आया है। वे निराश हो गए।

काफी समय बीत गया। इधर शिष्य की चिन्ता गुरु को बेचैन किए हुए उधर सुशीला को उसका अकृत्य नोंच-नोंचकर खा रहा था। वह जब ांत में होती तब उसे वह कृत्य याद आ जाता और वह फूट-फूटकर रो ती। सान्त्वना उसे तभी मिलती जब वह घंटों अकेली रो-रोकर आंसू बहा ी। किन्तु उसका मन उसे दूसरी ओर प्रेरित कर रहा था। वह ताह्नअपनी बात दूसरों से कह दो, दुःख हल्का हो जाएगा। वह तीह्न'नहीं, ऐसा नहीं करूंगी। यह खतरे का रास्ता है।' द्वन्द्व चलता रहा। ी वह हारती तो कभी मन। आखिर उसने निश्चय किया कि वह अपनी न गुरु के समक्ष रख देगी। इस विचार से वह कांप उठी। भय और शंका का संचार हुआ। एक ओर जीवन का सम्मान और दूसरी ओर त्मग्लानि। दोनों विचार उसको कुरेदने लगे, किन्तु उसके दृढ़ निश्चय ने को उबार लिया।

प्रातःकाल नहा-धोकर वह गुरु-वन्दना के लिए घर से निकली। गुरु दन कर एक ओर बैठने लगी। गुरु ने पूछाह्न'बहन, आज बहुत दिनों बाद यी हो। क्या अपने पीहर चली गयी थी?' उसने लज्जित स्वर में उत्तर ाह्न'नहीं, वैसे ही नहीं आ सकी। आज आपसे कुछ निवेदन करने आयी '

'कहो, क्या कहना चाहती हो?' गुरु ने कहा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

'सबके सामने नहीं, एकान्त में कुछ कहूंगी।'

गुरु ने अपने श्रावकों को वहां से हट जाने को कहा। सब वहां से च गए। गुरु को अकेले देख उसने कहाह्न'गुरुदेव, आज मैं अपने पाप प्रायश्चित्त करूंगी।'

गुरुह्न'कैसा पाप?'

सुशीलाह्न'बहुत बड़ा पाप, जिसके कहने से पहले ही दिल के दो टु हो जाते हैं। क्या आप मुझे क्षमा करेंगे?'

गुरुह्न'हां-हां, कहो तो कैसा पाप किया है तुमने?'

सुशीलाह्न'आप अपने शिष्य को भूले नहीं होंगे। मैंने उन्हें मार डाल मैं हत्यारिन हूं। आप मुझे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करें।'

गुरुह्न'हैं! क्या कह रही हो? मेरे शिष्य को मार डाला? क्यों? म विश्वास नहीं होता तुम्हारे वचन पर। कहोह्नसाफ-साफ कहो। घबराओ न बहन।'

सुशीलाह्न'मैं अपने पाप को छिपाकर दुगुना पाप करना नहीं चाहती। नहीं जानती थी कि ऐसा अनर्थ हो जाएगा। सोचा थाह्नमुनि हैं, पि जाएंगे। किन्तु देखते-देखते अनिष्ट हो गया।' उसने सारी घटना ज्यों त्यों कह सुनाई, 'गुरुदेव! मैं हत्यारिन हूं। मुझे प्रायश्चित्त दें।'

गुरुह्न'अभागिन! तुमने वह पाप किया है, जिससे छूटना आसान न है। तुमने मुझे वह क्षति पहुंचाई है, जिसकी पूर्ति जीवनदान से भी न होगी। तुमने मेरे जीवन को मौत में परिणत कर दिया। किन्तु..... प्रायश्चित्त करना चाहती हो? कल आना। मुझे कुछ सोच लेने दो।'

सुशीला ने सुख की सांस ली। वन्दन कर वह अपने घर की ओर च पड़ी।

इधर गुरु के हृदय में शिष्य की स्मृति ताजी हो गई। वे तिलमि उठे। अपने गुरुत्व को भूल-से गए। उन्होंने सोचाह्न'हाय! इस चाण्डालिनी मेरा सर्वस्व छीन लिया। मेरे फूले-फले बगीचे को इसने उजाड़ दिया। मैं इसके जीवन में आग लगाऊंगा। तिल-तिल कर इसे जलाकर ही सुख सांस लूंगा।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गुरु ने योचना रची। दूसरे दिन सुशीला समय पर वहां आ पहुंची। ने वन्दन किया और एक अपराधी की भांति एक कोने में खड़ी हो गई। ने कहाह्न'बहन! मैं बूढ़ा हूं। सुनता कुछ कम हूं। जोर-जोर से सारी बातें ाओ।'

सुशीला ने सरल-सहज भाव से सारी घटना कह सुनाई। बात पूरी होते पांच-छह व्यक्ति जिनको गुरु ने अपने पीछे वाले कमरे में छिपा रखा था र आए। सुशीला कुछ सहमी और सोचने लगीह्नशायद इन्होंने मेरी सारी न जान ली है।

गुरु ने कहाह्न'सुना तुमने? इसने मेरे प्यारे शिष्य को मारा है, इसने मुझे ा है। यह समाज के उज्ज्वल मुख पर धब्बा है। इसे पूरा दण्ड मिलना हिए।'

सुशीला ने सोचाह्न'हाय! यह क्या? जिनको मैंने अपने मन की बात ी, उन्होंने भी मुझे धोखा दिया। जिस बेल पर फल लगते हैं वही उन्हें ने लग जाएह्नयह कितना अन्याय है? यदि मैं हत्या की बात इन्हें नहीं ती तो ये भला कैसे जान पाते? मैंने सरलता बरती, इन्होंने वक्रता की। , जो होना था सो हो चुका। मैं इसे भी एक प्रायश्चित्त समझकर सह ी।'

इधर उन व्यक्तियों ने कुछ सोचा, विचारा और कहने लगेह्न'गुरुदेव! ीला ने आपके शिष्य की हत्या की है। यह पापिन है, दण्डनीय है। परन्तु पने उससे भी ज्यादा पाप किया है। आपको उससे भी बड़ा दण्ड मिलना हिए।'

गुरुह्न'हैं! यह क्या? मैंने पाप.....? कैसा पाप? क्या कह रहे हो?'

लोगह्न'हां-हां, आपने पाप किया है। आज सायं हम उसका निर्णय गे।' सुशीला की ओर मुड़कर उन्होंने कहाह्न'बहन! तुम सायं आना।'

प्रवचन के विशाल मंडप में एक ओर गुरुजी बैठे हैं, दूसरी ओर हजारों ों की भीड़ लगी थी। सुशीला एक ओर आंखें गाड़े खड़ी थी। वे पांचों क्ति वहां आए। सारे मंडप में सन्नाटा था। सबके मन में कुतूहल ह्न'क्या होगा? क्यों आज हमें एकत्रित किया गया है?' इन्हीं शंकाओं की ड़बुन में सारे लगे हुए थे। गुरु ने सोचाह्नक्या भंडाफोड़ होगा? मैंने कोई

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गलती तो नहीं की। क्या होगा?

शहर का एक मुख्य व्यक्ति उठा और ऊंचे मंच पर आकर बो
लगाह्व'हम सदा से धर्म के अनुरागी रहे हैं। गुरु में हमारी अटूट श्रद्धा रही
परन्तु यह कहते हुए मुझे खेद होता है कि आज हमें अपनी श्रद्धा का केन्
बिन्दु बदलना पड़ रहा है। गुरु गंभीर होते हैं। उनका उदर विशाल होता
बड़ी से बड़ी बात वे पचा जाते हैं। दूसरों के मर्मों को वे प्रकाश में
लाते। कड़वे-मीठे घूंट वे प्रसन्नता से पी जाते हैं। किन्तु आज हमारे ये
पथ से च्युत हो गए। बहन सुशीला उनसे अपने पाप का प्रायश्चित्त चाह
थी। गुरु ने योजना रची। हमें छिपाकर इसकी सारी बात सुनाई। मर्म-प्रका
के ये अपराधी हैं। इन्हें दण्ड मिलना चाहिए।'

उपस्थित लोगों ने वक्ता का समर्थन किया और यह तय हुआ
आज से वे उन्हें अपना गुरु नहीं मानेंगे। गुरु को होश हुआ। वे मन ही
दुःख पाने लगे। अब क्या होता? अवसर बीत चुका था।

सुशीला से उन लोगों ने कहाह्व'बहन! तुमने भारी पाप किया
उसका दण्ड भी तुम्हें मिल ही गया। प्रायश्चित्त हो चुका। घर जाओ
सुख से जीवन बिताओ।'

मर्म-प्रकाशन भी हत्या से कम नहीं है।

२. अध्यवसायों का खेल

ग्रामानुग्राम विचरते हुए भगवान् महावीर राजगृही में पधारे। उद्यानप
ने महाराज श्रेणिक को यह शुभ-संवाद दिया। राजा की चिराभिल
मनोभावना पूर्ण हुई। अपने कुटुम्ब को साथ ले वन्दनार्थ चला। हज
सामन्त व नगर के संभ्रांत व्यक्ति साथ थे।

जाते-जाते उसने देखा कि एक ओर महर्षि प्रसन्नचन्द्र ध्यान कर रहे
वे अडोल थे। वन्दना करने को राजा उनके पास गया। उनकी ध्यान
सौम्य-मुद्रा को देख राजा गद्‌गद् हो उठा। प्रेम में विह्वल हो उ
कहाह्व'धन्य हैं आप। आपने संसार का पार पा लिया। धर्म-जागरिका
आप सचेत हैं। आप प्रतिपल जागरूक हैं। परीषह सहने में आप समर्थ
आपको देख मेरे नेत्र अनिमेष हो रहे हैं। आज मैं धन्य हूं।' श्रेणिक गुण-

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रहा था। मुनि मौन थे। श्रेणिक चला गया। मुनि मौन खड़े थे। राजा के
ने के बाद कोई व्यक्ति वहां आया। मुनि को देख उसके हृदय में द्वेष उमड़
या। क्रोध से आंखें लाल हो गईं। वह बोला, 'रे जालिम! ढोंग रचते तुझे
ं नहीं आयी! बस बहुत हो चुका, अकर्मण्य! शत्रुओं ने तेरे समस्त राज्य
अस्त-व्यस्त कर डाला है। तू भयभीत हो यहां साधु बना बैठा है। यह
लिए शोभा नहीं देता। पुरुषत्व को संभाल। उठ, अपने बल-पराक्रम से
ुओं पर विजय पाने की चेष्टा कर। यदि कुछ और देरी हुई तो सर्वनाश
जाएगा। साधु-वेश को छोड़ दे, जल्दी उठ और अपना कर्तव्य संभाल।'

मुनि ध्यानस्थ थे। वे मौन खड़े थे। सभी बातें सुनीं। ध्यान टूट गया।
बोले नहीं। मन आर्त्तध्यान में प्रविष्ट हो गया। मन ही मन सोचाह्न'अरे!
क्या? मुझे साधु हुए देख शत्रुओं ने राज्य हड़पना सरल मान लिया है।
ों उन्हें अकाल मरने की लालसा हो रही है? मैं साधु बना तो क्या? मेरे
वित रहते शत्रु मेरे राज्य पर अधिकार नहीं कर सकते। निर्दय शत्रुओं ने
राज्य को नष्ट कर दिया। यह मेरे लिए असह्य है। मैं अभी वहां जाऊंगा
र एक-एक कर सबको मृत्यु की गोद में भेज दूंगा। इस प्रकार की
ल्पनाओं में प्रसन्नचन्द्र राजर्षि अपने श्रामण्य को भूल गए। कल्पना कुछ
गे बढ़ी। मन ही मन संक्लिष्ट परिणामों का वेग बढ़ा। शत्रुओं पर चढ़ाई
। दण्डा-दण्डी लड़ने लगे।'

प्रवचन चालू था। भगवान् देशना दे रहे थे। हजारों नर-नारी प्रवचन
आनंद लूट रहे थे। समता का साम्राज्य था। प्रवचन पूरा हुआ। लोग
ने-अपने घर लौट गए। श्रेणिक भगवान् के पास आया। उसके मन में
तूहल था। कुछ जिज्ञासाएं थीं। बद्धांजलि हो भगवान् से पूछाह्नभगवन्!
प सर्वविद् हैं। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि घोर तपस्या कर रहे हैं। सुदुष्कर करणी
रहे हैं। यदि इस अवस्था में उनका आयुष्य पूरा हो जाए तो वे किस
त में जा सकेंगे?

भगवान्ह्नपहली नरक में।

राजाह्नअरे! यह क्या? इतने घोर तपस्वी और पहली नरक! यह कैसी
ति? एक ओर तपस्या की उत्कृष्टता है, दूसरी ओर भगवद्वाणी की
ार्थता है। इतने घोर तपस्वी नरक में जाएंगेह्नयह विश्वास करने योग्य

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नहीं। परन्तु भगवद्वाणी भी तो अयथार्थ नहीं हो सकती।

श्रद्धा और अविश्वास के झूले में वह झूलता रहा।

आगे पूछाह्नभगवन्, अब?

भगवान्ह्नदूसरे नरक में।

उत्तर सुनते ही राजा सकपका गया। सोचाह्नयह क्या? प्रश्न के स
नरक-वृद्धि। प्रश्न किए ही क्यों जाएं? किन्तु प्रश्न बिना रहा भी कैसे जा
फिर पूछाह्नभगवन्, अब?

भगवान्ह्नतीसरे नरक में।

राजा का विस्मय बढ़ा। फिर पूछा, फिर नरक-वृद्धि। ज्यों पूछता
नरक-वृद्धि होती। छठे नरक पर्यन्त उत्तर सुन चुका था।

बद्धांजलि हो उसने पूछाह्नभगवन्! धृष्टता क्षमा करें। मन नहीं मा
कि ध्यानस्थ मुनि को यह गति संभाव्य हो, किन्तु आपके वचन भी
अयथार्थ नहीं हो सकते। भगवन्! अब उनकी गति क्या होगी?

भगवान्ह्नसप्तम नरक में।

राजा को कुछ तसल्ली हुई। जिज्ञासा बढ़ी। उसने प्रश्नों का तांता ल
दिया। पूछते-पूछते नरकों की परिसमाप्ति हो गई। हर्ष बढ़ता गया।
पूछाह्नभगवान्, अब?

भगवन्ह्नप्रथम स्वर्ग में।

ह्नहां-हां, यह उचित है। प्रश्न आगे बढ़े। स्वर्गों की बात भी
बढ़ी।

भगवान् ने कहाह्नराजन्! मुनि को केवलज्ञान हो गया है। वे मुक्त
गए। राजा ने सुनाह्नवह किंकर्तव्यविमूढ़ बना भगवान् की मुखमुद्रा की
अनिमेष देखता ही रहा। उसने पूछाह्नभगवन्! क्षमा करें। क्या मैं स्वप्न
नहीं देख रहा हूं? यह क्या? सप्तम नरक तक की स्थिति को पाने वा
मुनि कुछ ही क्षणों में मुक्त हो जाए, यह कैसे?

भगवान् ने कहाह्नराजन्! बात कुछ ऐसी ही है। तुम वन्दन कर
वहां से आगे चल पड़े तब किसी व्यक्ति ने महर्षि से कुछ अनर्गल
कही। बात मुनि के हृदय में लगी। ध्यान में परिवर्तन हुआ। वे मन-ही-

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ने शत्रुओं की अनिष्ट कल्पना करने लगे। लाखों को मार डाला। व्यवसाय बुरे बनते गए। इतने में ही एक व्यक्ति आया। मुनि को वन्दना , गुणगान किए। तपस्या के गुण गाये। मुनि सचेत हुए। उन्हें अपने पण्य का भान हुआ। विचारों में उथल-पुथल मची। सोचा, यह क्या कर ा मैंने? धिक्कार है मेरी आत्मा को! हाय, यदि इन अध्यवसायों में मेरी यु हो जाती तो मेरी क्या गति होती? विचार उन्नत बनते गए। पवित्रता ी। विचारों ही विचारों से जो नरक के भाव संचित किए थे, वे टूटने लगे। टूट गए। होते-होते घातिकर्म चतुष्टय का क्षय हुआ। केवली बने और ाति कर्मों के नष्ट होते ही मुक्त हो गए।

३. चार मित्र

किसी नगर में चार मित्र रहते थे। उनमें घनिष्ठ मित्रता थी। एक बार इकट्ठे होकर बोलेह्नबताओ, कौन कैसे जीता है?

राजकुमार ने कहाह्नमैं अपने पुण्य-बल से जीता हूं।

मंत्री-पुत्र ने कहाह्नमैं अपने बुद्धि-कौशल से जीता हूं।

श्रेष्ठि-पुत्र ने कहाह्नमैं अपने सौन्दर्य के बल से जीता हूं।

वणिक्-पुत्र ने कहाह्नमैं अपने चातुर्य के बल से जीता हूं।

चारों ने यह निर्णय किया कि कहीं अन्यत्र जाकर इसकी परीक्षा की ए।

वे चारों एक अज्ञात नगर में पहुंचे। वहां उन्हें कोई नहीं जानता था। वे उद्यान में ठहरे। तीनों मित्रों ने वणिक्-पुत्र से कहा कि वह शीघ्र ही जन की व्यवस्था करे।

वणिक्-पुत्र बाजार में गया और एक वृद्ध बनिये की दुकान पर जा चा। उसकी दूकान पर ऐसे ही बहुत भीड़ रहती थी और संयोगवश उस कोई उत्सव था। ग्राहकों की इतनी भीड़ थी कि वह बनिया उसे निपटा ं सकता था। भीड़ बढ़ती जा रही थी। बनिया हैरान था। वणिक्-पुत्र ने च्छा अवसर देखा। वह दुकान के अन्दर गया और ग्राहकों को नमक, , घृत, गुड़ आदि देने लगा। शाम को बनिये ने हिसाब मिलाया तो उसे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बहुत लाभ हुआ। वह वणिक्-पुत्र से संतुष्ट हुआ और उसे भोजन
निमंत्रण दिया। वणिक्-पुत्र ने कहाह्न'मेरे तीन साथी और हैं, मैं उनके बि
भोजन नहीं कर सकता।' बनिये ने उसके सभी साथियों को बुला भेज
भोजन-ताम्बूल आदि से उनका सत्कार किया और वणिक्-पुत्र को प
रुपये भेंट देकर सम्मानपूर्वक विदा किया।

दूसरे दिन श्रेष्ठि-पुत्र की बारी आयी। तीनों साथियों ने कहा कि अ
भोजन की व्यवस्था तुम्हें करनी है। उसने अपना शृंगार किया और वहां
चला। सीधा वेश्याओं के मुहल्ले में पहुंचा। वहां देवदत्ता नामक एक वेश
रहती थी। वह पुरुषों से द्वेष करती थी। अनेक राजकुमार और श्रेष्ठि-पुत्र
पाने को लालायित रहते थे, परन्तु वह किसी के वश में नहीं आती थ
उसने श्रेष्ठि-पुत्र का रूप देखा, तो उस पर मोहित हो गई। उसने अप
दासी को भेज उसे अपने घर बुला लिया। वह वहां पहुंचा। वेश्या ने भो
करने के लिए आग्रह किया। उसने कहाह्न'मेरे तीन साथी उद्यान में बैठे
उनके बिना मैं भोजन नहीं कर सकता।' वेश्या ने उन्हें भी बुला भेजा। भो
आदि से उनका बहुमान कर अपने मुख्य अतिथि श्रेष्ठि-पुत्र को सौ रुपये
किए।

आज तीसरा दिन था। मंत्री-पुत्र की आज बारी थी। भोजन
व्यवस्था उसे करनी थी। वह नगर में गया। जाते-जाते एक स्थान पर उ
लोगों की भीड़ देखी। जानने की उत्सुकता बढ़ी। लोगों से पूछा। लोगों
सारी बात बताई। वह न्यायालय था, वहां एक विचित्र मुकदमा चल
था, दो सौतों के बीच झगड़ा था। एक के एक बेटा था, दूसरी के न
जिसके पुत्र नहीं था वह अपनी सौत के लड़के को बहुत प्यार करती
उसे स्नेह से खिलाती-पिलाती। बच्चा उससे इतना हिलमिल गया था
वह अपनी मां के पास नहीं जाता था। सारे दिन वहीं खेलता। मां
निश्चिन्त थी। उसके मन में कभी सन्देह नहीं हुआ।

कुछ दिन बीते। दोनों सौतों में कुछ अनबन हो गई। वह कहने ल
कि यह पुत्र मेरा है और दूसरी कहतीह्नपुत्र मेरा है। कलह बढ़ता गया। दो
न्यायालय पहुंचीं। उन्होंने अपनी सारी बात न्यायाधीश के सामने रख
न्यायाधीश किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह नहीं ज

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ा कि बच्चे की असली मां कौन है?

मंत्री-पुत्र वहीं खड़ा था। उसने सारी स्थिति जान ली। उसने यायाधीश से कहाह्न'यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इसका फैसला करूं।' यायाधीश यही चाहता था। उसने आदेश दे दिया।

मंत्री-पुत्र ने दोनों स्त्रियों को अपने पास बुलाया और ताड़ना देते हुए ाह्न'यदि तुम सच-सच नहीं बताओगी तो मैं अभी इस लड़के के दो टुकड़े दोनों को एक-एक टुकड़ा दे दूंगा।' यह सुनते ही लड़के की मां रोकर ने लगीह्न'सरकार! मुझे मेरा पुत्र नहीं चाहिए। उसे मेरी सौत को दे दिया ए। यदि वह जीता रहा तो मैं उसे देख तो लिया करूंगी।' दूसरी सौत न्न हो रही थी। उसने सोचा कि जीत मेरी है, किन्तु बात कुछ और ही । मंत्री-पुत्र ने न्यायाधीश से कहा कि यह लड़के की असली मां है। यायाधीश बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मंत्री-पुत्र का सम्मान किया। उसके तीनों थियों को अपने घर भोजन करवाया और उसे एक हजार रुपए दे मानपूर्वक विदा किया।

चौथे दिन तीनों साथियों ने राजपुत्र से कहा कि वह अपने पुण्य-बल परिचय दे। राजकुमार वहां से चला। उद्यान में एक विशाल वृक्ष के नीचे गया।

संयोगवश उस दिन उस नगर के राजा की मृत्यु हो गई थी। उसके ई पुत्र नहीं था। सामन्त मंत्रियों ने सोचा, अब राजगद्दी पर किसे बिठाया ए। उन्होंने एक उपाय ढूंढ निकाला। एक विशिष्ट घोड़े को श्रृंगारित कर, धिवत् पूजा कर उसे नगर में छोड़ दिया और कहा कि यह घोड़ा जिस क्ति के पास हिनहिनायेगा, वही हमारा राजा होगा।

घोड़ा शहर के मुख्य मार्गों से होता हुए उद्यान में जा पहुंचा, ां राजकुमार बैठा था। उसने उसके आसन पर पैर रखे और जोर- र से हिनहिनाने लगा। मंत्रीगण आए। अपने भावी राजा को देख न्न हुए। विधिवत् उसे अपने नगर में ले गए। राजपुरोहितों ने राज्याभिषेक या। उसने अपने तीनों साथियों को बुला लिया। सब बड़े आनन्द से रहने ।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४. स्त्रीचरित्र

पुराने जमाने की बात है। बसन्तपुर नाम का नगर था। वहां धन
नाम का एक सेठ रहता था। उसकी पुत्रवधू का नाम सुभद्रा था।
प्रतिदिन स्नान करने नदी पर जाती थी। एक दिन वह स्नान कर रही थी
श्रेष्ठिपुत्र देवदत्त ने उसे देख लिया। उसने कहाह्न

सुण्हायं ते पुच्छइ एस नदीं पइरसो हिय तरंगा।
एते च नदी रूक्खा अहं च पादेसु ते पणतो।।

अर्थात्ह्नहे देवी! प्रचुर तरंगों वाली यह नदी तुझे पूछ रही है कि क
तूने अच्छी तरह से स्नान कर लिया? नदी के ये वृक्ष और मैं तुम्हारे चर
में प्रणत हूं।

उसने उत्तर देते हुए कहाह्न

सुहगा होतु नदी ओ चिरं च जीवंतु जे नदी रूक्खा।
सुण्हाय पुच्छमाणं धत्ती हामो पियं काडं।।

अर्थात्ह्नकुमार! नदी सौभाग्यवती हो। ये नदी के वृक्ष चिरजीवी
सुस्नातः ऐसा पूछने वालों को हम प्रिय मानकर ग्रहण करती हैं।

स्त्री के वचन सुनकर देवदत्त के दिल में उससे मिलने की अभिल
उत्पन्न हुई। किन्तु वह उसका घर नहीं जानता था। पास में ही एक वृक्ष
नीचे कई स्त्रियां बैठी थीं। वह उनके पास गया। उनको बहुत से फल-पु
दिए और पूछाह्नवह स्त्री, जो अभी-अभी स्नान कर रही थी, कौन
उन्होंने कहाह्नवह धनदत्त सेठ की पुत्रवधू है और अमुक गली में रहती
वह उससे मिलना चाहता था। उसकी उत्कण्ठा बढ़ी। एक दिन का विरह
उसके लिए असह्य था।

देवदत्त वहीं एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। इतने में ही एक भिखा
वहां आयी। वह भिक्षा चाहती थी। देवदत्त ने उसे कुछ फल दिए।
संतुष्ट हुई। उसने कहाह्नमेरे योग्य कोई कार्य हो तो कहें। उसने कहाह्नधन
सेठ की पुत्र-वधू से मैं मिलना चाहता हूं। तुम उसको जाकर मेरा सं
सुनाओ और प्रत्युत्तर में जो कुछ वह कहे वह मुझे जल्दी सुना जाना।
तुम्हें पुरस्कार दूंगा।

वह भिखारिन दौड़ी-दौड़ी सुभद्रा के यहां गई और एकांत देख उ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ी बात कही। सुभद्रा उस समय स्याही तैयार कर रही थी। भिखारिन की न सुनते ही वह तिलमिला उठी। उसने अपने मसिलिप्त हाथों से एक चांटा ा। भिखारिन के गाल पर उसकी पांचों अंगुलियां अंकित हो गईं। वह ी-रोती कुमार के पास आयी और उससे कहाह्न'वह तो तुम्हारा नाम तक ना नहीं चाहती।' कुमार ने निःश्वास छोड़ते हुए कहाह्न'खैर।' पांच ुलियों के निशान देख वह समझ गया कि वह वसन्त पंचमी के दिन लेगी।

वसन्त पंचमी का दिन आया। सुभद्रा अपनी सखियों के साथ अशोक में क्रीड़ा करने आयी। कुमार भी ठीक समय पर वहां पहुंच गया। दोनों आंखें मिलीं। सखियों से अलग हो वह और देवदत्त मिले। वे आपस में ालाप करने लगे। दोनों अशोक वृक्ष के नीचे सो रहे थे। इतने में ही दत्त सेठ वहां आ निकला। उसने अपनी पुत्रवधू को पहचान लिया। किन्तु य पुरुष के साथ उसे देख, उसने सोचाह्न'यह मेरा लड़का तो नहीं है। क्या पुत्रवधू पर-पुरुष में आसक्त है?' वह उसके पास आया और सुभद्रा के से एक नूपुर निकाल घर की ओर चला गया। नूपुर खोलते ही सुभद्रा ा गई थी। उसने अपने श्वसुर को पहचान लिया, किन्तु लज्जावश कुछ ल नहीं सकी।

दूसरे दिन की बात है। सुभद्रा ने अपने पति से कहाह्न'पतिदेव! जकल गर्मी का मौसम है। प्रचंड गर्मी से जी मचलाता है। यदि आपकी छा हो तो अशोक वन में जाकर कुछ दिन रहें।' पति ने सुभद्रा की बात ा ली। दोनों अशोक वन में उसी वृक्ष के नीचे आराम कर रहे थे। कुछ ही ों के बाद सुभद्रा ने अपने पति को जगाते हुए कहाह्न'हाय! यह क्या? ा यह आपके कुल के अनुरूप है?'

पति ने कहाह्न'क्यों? क्या बात है?'

सुभद्रा ने कहाह्न'बात क्या है! अभी-अभी आपके पिता यहां आये थे र मेरे पांव से एक नूपुर निकालकर ले गए। क्या यह उनके अनुरूप कार्य वे बूढ़े हो चले हैं, फिर भी इस प्रकार की चेष्टा करते नहीं शर्माते।'

पति ने कहाह्न'कोई बात नहीं। मैं कल प्रातःकाल ही इस बात की च करूंगा।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रातःकाल का समय था। कुमार ने अपने पिता से पूछा। पिता
कहाह्न'हैं! यह क्या? चोर कोतवाल को दण्ड देता है। मैंने नूपुर
निकाला। भला तू भी कितना सयाना है कि तूने स्त्री की बात पर विश्व
कर लिया। हां, मैं तुझे कह देता हूं कि तेरी स्त्री के लक्षण मुझे ठीक
लगते। वह किसी अन्य पुरुष के पास आती-जाती है। मैंने अपनी आंखों
उसको दूसरे पुरुष के साथ क्रीड़ा करते देखा है।'

विवाद बढ़ गया। सुभद्रा ने कहाह्न'ये मुझ पर लांछन लगाते हैं। अ
पांव से इनको नूपुर निकालते मैंने देखा है। ये अपना दोष छिपाने के
मुझे कलंकित कर रहे हैं। मैं यह आरोप सहन नहीं कर सकती। इस कल
को मिटाने के लिए मैं अग्नि-परीक्षा करूंगी। तभी सभी को मालूम
सकेगा कि सही कौन है और झूठा कौन है?' सबने बात मान ली। अ
परीक्षा का दिन निश्चित कर दिया गया।

दूसरे दिन सुभद्रा ने देवदत्त को अपने पास बुलाया और उससे स
बात कही। देवदत्त घबरा गया। वह कांपने लगा। सुभद्रा ने कहाह्न'घब
क्यों हो? मैं सारी बात समेट लूंगी।'

उसने देवदत्त को पिशाच का रूप बना यक्ष-मन्दिर में बैठने को क
प्रतिदिन वह मन्दिर में जाती और यक्ष तथा पिशाच की पूजा कर ल
आती। इस प्रकार कई दिन बीते।

आज अग्नि-परीक्षा का दिन था। सभी घरवाले यक्ष-मन्दिर में एकी
हुए। सुभद्रा अग्नि-परीक्षा के लिए तैयार खड़ी थी। लोगों ने कहाह्न'सुभ
अभी अवसर है, तुम अपना अपराध स्वीकार कर लो। यह मन्दिर पुराना
यहां यक्ष की मूर्ति प्रभावशाली है। जो पाप करता है, उसके पांव यहां चिप
जाते हैं और जो पाप नहीं करता, वह छूट जाता है।'

सुभद्रा अपने निश्चय पर दृढ़ थी। वह टस से मस नहीं हुई। वह
के सम्मुख गई। विधिवत् पूजा करने के बाद उसने कहाह्न'ओ यक्ष देव
यदि मैंने अपने पतिदेव और इस पिशाच को छोड़कर मन में भी किसी अ
पुरुष की वांछा की हो तो मेरे पांव यहां चिपक जाएं।'

सब उत्कण्ठा से देख रहे थे। श्वसुर धनदत्त को निश्चय था कि सुभ
ने पाप किया है और इसके पांव अवश्य चिपक जाएंगे। किन्तु पांव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पके। सुभद्रा छूट गई। उसे अपनी जीत पर गर्व था। धनदत्त को नीचा ना पड़ा।

यक्ष को सुभद्रा की करतूत पर हंसी आयी। उसने सोचा, 'सुभद्रा ने भी ठग लिया है।' स्त्रियों के चरित्र को कौन जान सकता है।

सेठ धनदत्त का लोगों ने बहुत तिरस्कार किया। पुत्रवधू पर झूठा रोप लगाने के कारण लोगों ने उसे बुरा-भला कहा। वह तिरस्कार की घूंट घर आ गया। आज से उसका जीवन ही बदल गया। वह न भरपेट भोजन ता और न नींद ही लेता। चिन्ता के कारण उसे नींद नहीं आती। कई रातें ने जगते-जगते बिताईं। उसने सोचाःघर में रहने से मुझे क्या लाभ? टे-बड़े सब मेरा तिरस्कार करते हैं। अच्छा हो यदि मैं यहां से चला ऊं। वह अपने घर से निकल पड़ा।

राजा के कानों तक यह बात पहुंची। राजा ने उसे अपने पास बुलाया र उसे अपने अंतःपुर का रक्षक बना दिया। वह सारी रात जागता रहता र अंतःपुर का पहरा देता।

इस प्रकार कई दिन बीते। अन्तःपुर के पास ही राजा का प्रधान हाथी ा रहता था। राजा की एक रानी प्रतिदिन उस हाथी के सिर पर पांव कर नीचे उतरती और हस्तिपाल के पास चली जाती। वह हस्तिपाल में सक्त थी। पौ फटते-फटते वह लौट आती। राजा इस बात से अनजान ।

आधी रात बीत चुकी थी। रानी अपने प्रेमी के पास जाने लगी। तःपुररक्षक ने उसे देख लिया। वह धीरे-धीरे उसके पीछे-पीछे चला और की सारी चेष्टाएं जान लीं। उसने सोचाः'ओह! कितना व्यामोह? इतने ोर अनुशासन व रक्षा के घेरे में रहने वाली ये देवियां भी यदि इस प्रकार च्छन्द विहार करती हैं तो भला स्वच्छन्द विचरण करनेवाली स्त्रियों का कहना ही क्या? इस प्रकार सोचते-सोचते उसके मन का बोझ हल्का हो । चिन्ता मिटते ही वह अपने स्थान पर आकर सो गया। प्रातःकाल सारे ा अपने-अपने काम में लग गए। वह नहीं उठा। राजा तक बात पहुंची अंतःपुर का रक्षक सो रहा है। राजा को आश्चर्य हुआ। राजा वहां चा। राजा ने उसे मुश्किल से उठाया। उसने सारी बात राजा से कह दी।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उसने कहाह्न'महाराज! एक देवी को तो मैंने अपनी आंखों से देखा है। जाने आपकी कितनी रानियां इस प्रकार करती होगीं।' राजा अवाक् रह गय उसे अपने रानियों के सतीत्व पर गर्व था। उसने रानियों की परीक्षा क चाही।

राजा ने एक कृत्रिम हाथी बनवाया और उसे दूर खड़ा कर दिया। दिन राजा ने अपनी समस्त रानियों से कहा कि वे बारी-बारी से उस पर कर नीचे उतरें। सभी रानियों ने खुशी-खुशी राजाज्ञा का पालन किया। कि को यह पता नहीं था कि हाथी कृत्रिम है। अन्त में उस रानी की बारी जो हस्तिपाल में आसक्त थी। वह राजा के पास आयी और कहाह्न'राज मुझे तो हाथी पर चढ़ते डर लगता है।' राजा ने उसके लिए सीढ़ी मंग और उस पर चढ़ने को कहा। वह चढ़ते-चढ़ते बीच में ही नीचे आ गि राजा ने एक कंकर फेंका। उसके लगते ही रानी कराहने लगी।

राजा ने यह जान लिया कि यही रानी कुलटा है। उ कहाह्न'मदोन्मत्त हाथी के सिर पर पांव रखकर नीचे उतरते तुझे डर लगता, और आज कृत्रिम (भंडमय) हाथी पर चढ़ते भय लगता है। त की सांकल से आहत होने पर भी तू मर्च्छित नहीं हुई और आज एक कं की चोट से कराहने लगी है।'

महावत अपनी इच्छानुसार न होने पर रानी को सांकल से मारता थ राजा ने रानी के शरीर को देखा। उस पर सांकल के चिह्न थे। वह खुशी-खुशी सह लेती थी। राजा रुष्ट हुआ। उसने आज्ञा दी कि रा महावत और हाथी को दण्ड दिया जाए। राजा ने धनदत्त को बुलाया। उस पूरी आपबीती सुनी। राजा ने पुत्रवधू सुभद्रा को बुलाया। उसे डराया। डर कारण उसने अपनी करतूत स्वीकार कर ली। देवदत्त को पकड़ा गया दोनों को देश से निकाल दिया गया।

स्त्रीचरित्र को देखकर राजा विरक्त बना और साधु बन गया।

५. लोभ का कटुक फल

कामिय तालाब के तट पर एक विशाल अशोक वृक्ष था। तालाब कई विशेषताएं थीं। जो कोई व्यक्ति इस अशोक वृक्ष पर चढ़ कर तालाब

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ड़ पड़ता, उसका परिवर्तन हो जाता। तिर्यंच से मनुष्य और मनुष्य से देवता जाता। यदि कोई दूसरी बार उसमें कूदता तो वह अपने मूलस्वरूप में आ ता।

वहां पर एक वानर दम्पत्ति प्रतिदिन पानी पीने के लिए आया करता । एक बार की बात है, वह बन्दर अपनी स्त्री वानरी को साथ ले वहां ी पीने आया। उसने उस दिन तालाब की विशेषता सुनी। उसे अपनी कृति बदलने की बात जंच गई। दोनों ने कुछ देर सोचा और वृक्ष पर से ालाब में कूद पड़े। पानी का स्पर्श होते ही वे वानर से मनुष्य बन गये। व वे वानर-वानरी के रूप में न रहकर एक पुरुष और स्त्री के रूप में आ । मनुष्य रूपधारी वानर ने अपनी स्त्री से कहाह्न'हम वानर से मनुष्य तो ही गये। अब दुबारा इसमें पड़ने से 'देव' बन जाएंगे। अतः हमें पुनः ोग करना चाहिए।' स्त्री ने कहाह्न'कौन जाने? यदि हम देव न बने तो?' ने कहाह्न'यदि हम देव न भी बनेंगे तो भी अपनी यह मनुष्य आकृति तो ों नहीं जाएगी।' बन्दरी के पुनः पुनः रोकने पर भी वह बन्दर नहीं माना र तत्क्षण अशोक वृक्ष पर चढ़कर तालाब में कूद पड़ा। कूदते ही वह पुनः र बन गया।

उसी गांव का राजा शिकार की टोह में उधर आ निकला। एक सुन्दर ी को वहां अकेली बैठी देख वह उसे अपने महलों में ले गया। उसे अपनी ी बना उससे भोग भोगने लगा।

कुछ ही देर बाद वहां कई दूसरे व्यक्ति आये और उस बन्दर को पकड़ ले गये। उसे नाचना सिखा कर वे गांव-गांव में उसका प्रदर्शन करने । एक बार वे अपने बन्दर का खेल दिखाने के लिए राजा के पास गये। ा-रानी और अन्य लोग खेल देखने वहां उपस्थित हुए। बन्दर बार-बार ी की ओर जाता और उससे कुछ याचना करता। रानी ने उसे पहचान या। उसने कहाह्न

जो जहा वट्टए कालो, तं तहा सेव वानरा।
मा वजुल परिब्भट्ठो, बानरा पडणं सर।।

'हे वानर! अब जिस अवस्था में है, उसी अवस्था का उपभोग कर। बात का स्मरण कर, जो मैंने तुझे तब कही थी, जब तूं दूसरी बार ोक वृक्ष से नीचे कूदने जा रहा था।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

६. लोभ में लाभ कहां?

एक ब्राह्मण बहुत गरीब था। वह प्रतिदिन पहाड़ी पर बसे एक मं
में जाता और देवी की आराधना करता। एक दिन देवी ने उसे दक्षिणा
शंख देते हुए कहाह्नप्रतिदिन प्रातः स्नान करके शुद्ध मन से तुम जो
मांगोगे, यह शंख तुम्हें प्रदान कर देगा।

ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ। घर लौटते वक्त वह एक ब्राह्मण के
ठहरा, रात्रि वहीं व्यतीत की। प्रातः जब उठा तो देवी के निर्देशानुसार
शंख की पूजा की और साथ ही अपनी मांग भी प्रस्तुत कर दी। देखते
देखते शंख ने उसकी चाह को पूरा कर दिया।

यह सारी स्थिति उस घर का मालिक देख रहा था। ज्योंही वह क
से बाहर निकला उसने शंख को उठाकर बदले में दूसरा शंख रख दि
ब्राह्मण कुछ देर बाद अपने घर चला गया। अगले दिन सुबह भी उ
यथावत् शंख की पूजा कर अपनी मांग प्रस्तुत की। पर यह क्या! आज
उसे प्रतिदान में कुछ नहीं मिला।

वह अगले दिन पुनः देवी के उपपात में पहुंचा और अपनी आप बं
कह सुनाई। देवी ने दो क्षण ध्यान लगाया, उसे सारी स्थिति समझते देर
लगी। देवी ने एक दूसरा शंख और दे दिया। इस बार भी ब्राह्मण का
घर में ठहरना हुआ। गृहपति के मन में उसके नये शंख के बारे में जानने
उत्सुकता थी। अगले दिन उसने देखा, ब्राह्मण ने शंख से सौ रुपए मांगे
शंख से आवाज आई, लो पांच सौ रुपया। यह सुन गृहपति का मन लोभ
भर गया। अब वह जैसे-तैसे उसी शंख को पाना चाहता था, जो मांगने
भी ज्यादा देता था। ज्योंही ब्राह्मण कमरे से बाहर निकला उसने उस श
को उठाकर बदले में पहले दिन वाला शंख रख दिया। ब्राह्मण अपने
चला गया। उधर गृहपति अगले दिन की बेसब्री से प्रतीक्षा करने लगा।

रात बीती। आकाश में उषा की लालिमा छा गई। वह भी अ
बिस्तर से उठा और उसने नहा-धोकर शंख की पूजा की। अब तो वह
आ गया जिसकी उसे प्रतीक्षा थी। उसने कहाह्नलाओ पांच सौ रुपए,
आवाज आईह्नलो पांच हजाए रुपए। वह बोलाह्नलाओ हजार रुपए,
शंख की आवाज आईह्नलो दस हजार रुपए। तब वह बोलाह्नअरे! तुम

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ल बोलते ही हो, देते तो कुछ नहीं। तब उस शंख ने अपना परिचय तुत करते हुए कहाह्न**अहं ढपोरशंखोऽस्मि वदामि न ददामि च।** मेरा नाम लशंख है और बोलना मेरी नियति है। मुझसे कुछ भी पाने की आशा ोगे तो तुम्हें केवल निराशा ही हाथ लगेगी।

यह सुनकर गृहस्वामी का चेहरा उतर गया। उसके सारे सपने चूर-चूर गए। अब तो रह-रह कर एक ही बात मन को साल रही थीह्नहाय! धिक धन के लोभ में प्राप्त शंख को क्यों गंवाया। वस्तुतः जो अपनी ही लसा में बंध जाता है और दूसरों की आंखों में धूल झोंकने की चेष्टा ता है वह स्वयं धोखे में रहता है और प्राप्त संपदा को भी खो देता है। लिए जीवन का सूत्र बनेह्न'लोभ नहीं, संतोष ही सुख का निधान है।'

७. मुद्गशैल

एक बार मुद्गशैल और पुष्करावर्त मेघ में विवाद छिड़ गया। एक हताह्नमैं बड़ा हूं और दूसरा कहताह्नमैं सर्व शक्तिमान हूं। विवाद बहुत बढ़ ा। मुद्गशैल ने मेघ से कहाह्न'यदि तुम मुझे तिलतुष मात्र भी खंडित कर ो तो मैं समझूंगा कि तुम पुष्करावर्त मेघ हो।' इस गर्वोक्ति को सुनकर ने उत्तर देते हुए कहाह्न'यदि तुम मेरी एक धारा भी सह लोगे तो मैं झूंगा कि तुम मुद्गशैल हो।'

कुछ दिन बीते। पुष्करावर्त मेघ ने सात दिन-रात तक मुद्गशैल पर लाधार वर्षा की। फिर सोचा, अब देखना चाहिए उसकी क्या दशा है? यद वह नष्ट हो गया होगा। उसने देखा कि मुद्गशैल पहले की अपेक्षा यदा चमक रहा है।

मुद्गशैल ने अपने प्रतिद्वंद्वी को ललकारते हुए कहाह्न'मेघ! अपनी क्ति का प्रयोग कर लिया तूने? कहां गई तेरी गर्वोक्ति?' मेघ लज्जित हो ां से चला गया।

पुष्कर मेघ के सात दिन-रात बरसने पर भी चिकने पत्थर पर कुछ भी सर नहीं हुआ, इसी प्रकार शैल सम अयोग्य व्यक्ति पर भी गुरु के उपदेशों कोई असर नहीं होता।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

८. चिलातपुत्र

राजगृह नगर में धन नाम का सार्थवाह रहता था। वह धनाढ्य
सभी सुख-सुविधाओं से सम्पन्न था। उसके भद्रा नाम की पत्नी थी। उ
पांच पुत्र थे। उनके नाम थेह्लधन, धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षि
एक इकलौती पुत्री थी। उसका नाम था सुंसमा। पुत्री देखने में रूपवती
लावण्य में अनुपम थी। वह भाइयों की लाडली थी और सबके
आकर्षक थी। धन सार्थवाह के पास एक दासपुत्र भी रहता था। उसका
था चिलात। वह बचपन से ही सुंसमा को क्रीडा कराने और यत्र-तत्र घु
का काम करता था। वह बच्चों का मनोरंजन कराने में कुशल था। उ
बचपन से ही चोरी करने की लत पड़ गई। वह कभी कभार चोरी भी
लेता था। जब-जब उसकी शिकायत सेठजी के पास पहुंचती तो
सार्थवाह उसे समझाने का प्रयत्न करता, कभी डराता-धमकाता, ताड़
प्रताड़ना भी देता। पर आदत की लाचारी बुरी होती है। सेठजी के डरा
धमकाने पर वह चिलातपुत्र कुछ दिन शान्त रहता। फिर कभी अवसर देख
तो पुनः चोरी कर लेता। इस आदत से धन सेठ तंग आ गया। अन्त
उसने उसे घर से निकाल दिया। वह घूमता-फिरता हुआ सिंहगुफा नाम
एक चोरपल्ली में जा पहुंचा। उसका नायक विजय नाम का चोर था।
अति खूंखार, निर्दयी, साहसिक और महाक्रोधी था। उसके हाथ सदा खून
सने रहते थे। उसके नाम से आस-पास के लोग भी भयभीत रहते
चिलातपुत्र ने वहां जाकर विजय तस्कर की अधीनता स्वीकार कर ल
धीरे-धीरे वह भी चौर्यकार्य में कुशल हो गया। तस्कर सेनापति विजय
उसकी योग्यता से प्रभावित था। उसने भी अपनी ओर से उसको चोरी
अनेक गुप्त रहस्य सिखाए।

कुछ समय के बाद सेनापति विजय का देहावसान हो गया। बाद
चोरपल्ली के सभी तस्करों ने चिलातपुत्र को चोरसेनापति का पद दे दि
वह भी अपने स्वामी का अनुगमन करता हुआ चौर्यकर्म के दायित्व
निभाने लगा।

एक दिन चिलात को धन सार्थवाह का घर और सुंसमा के स
बिताए दिनों की याद आ गई। अब भी सुंसमा के प्रति उसका मोह नहीं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

। एक दिन उसने अपने चोरसारथियों से कहाह्नआज हमें राजगृह के ाढ्य सेठ धन के यहां चोरी करनी है। अर्धरात्रि में सभी चोर उसी दिशा ओर चल पड़े। नगर के मुख्य दरवाजे पर आते ही चिलात ने अस्वापिनी द्या के द्वारा पहरा देने वाले प्रहरियों को प्रगाढ निद्रा में सुला दिया और ाटोद्घाटिनी विद्या से बन्द दरवाजों को खोल दिया। निर्विघ्नता से चलते वे धन सार्थवाह के घर पहुंचे। बन्द दरवाजों को खोलकर वे अन्दर घुसे। समय सारा परिवार नींद में था, किन्तु पैरों की आहट से घर के सभी स्य जाग गए। चोरों की फौज को देखकर अकेला सेठ और उसके पुत्र भी ा कर सकते थे? वे सभी भयभीत बने हुए स्तब्ध होकर देखते रहे। चोरों विपुलधन की गठरियां बांधी और सुंसमा पुत्री का अपहरण कर पल्ली की र प्रस्थान कर गए।

चोरों के प्रस्थान करने के बाद धन सार्थवाह ने अपने घर को संभाला। को धन चुराने की उतनी चिन्ता नहीं थी जितनी कि सुंसमा के अपहरण । वह तत्काल नगररक्षकों को साथ लेकर उनका पीछा करने लगा। चोर गे-आगे भाग रहे थे और पीछे उनका अनुगमन करते हुए आरक्षक दौड़ थे। जैसे-जैसे आरक्षक उनके निकट पहुंच रहे थे वे चोर अपनी जान ाने के लिए धन को इधर-उधर फेंकते हुए भागे जा रहे थे। नगररक्षकों को ल धन का प्रलोभन था, इसलिए वे चिलात तस्कर को पकड़ने और मा को उनके चंगुल से मुक्त कराने में कोई उत्साह नहीं दिखा रहे थे। वे बटोरकर राजगृह नगर आ गए। अकेला धन सार्थवाह और उसके पांच अब भी तस्करों का पीछा कर रहे थे। अन्त में चिलात दौड़ता-दौड़ता त थक गया। वह सुंसमा को और आगे ले जाने में असमर्थ था। उसने ीं सुंसमा का सिर काट दिया। धड़ को छोड़कर वह मस्तक को बालों से ड़कर दौड़ा जा रहा था।

सेठ और उसके पुत्रों ने सुंसमा का कटा हुआ धड़ देखा। उन्हें अत्यन्त ख हुआ। वे जिस उद्देश्य से चोरों का पीछा कर रहे थे वह खत्म हो गया । उन्हें अब आगे जाना उचित नहीं लगा। उन्होंने वहीं शव का दाह- कार कर दिया और राजगृह लौट आए। चिलात सिर लेकर आगे से आगे ता जा रहा था। एक वृक्ष के नीचे उसने एक मुनि को देखा। वे ाचारण मुनि थे। उसने मुनि की सौम्यमुद्रा और दिव्यता को पढ़ा। मुनि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

को देखते ही वह उनके निकट आया और कहाह्नसंक्षेप में मुझे भी
बताओ। साधु ने तीन शब्दों का उच्चारण कियाह्नउपशम, विवेक और संव
इन शब्दों को कहते ही मुनि आकाश की ओर पक्षी की भांति उड़ ग
चिलात प्रतिमा की भांति खड़ा-खड़ा यह दृश्य देखता रह गया। अब
मुनि द्वारा उच्चारित शब्दों की मीमांसा करने लगा। बार-बार अर्थ
अनुप्रेक्षा करते हुए उसने समझ लिया कि उपशम का तात्पर्य हैह्नअपने क्र
को शान्त करना। विवेक का तात्पर्य हैह्नशरीर और आत्मा की भिन्नता
बोध करना और संवर का अभिप्राय हैह्नमन और इन्द्रियों का निग्रह करन
ऐसा चिन्तन कर वह अपनी रक्तरंजित तलवार और सुंसमा के कटे हुए
को एक ओर रख कर ध्यान में लीन हो गया। रक्त के कारण अने
वज्रमुखी चींटियां वहां आने लगीं। एक ओर चींटियों का आक्रमण तो दू
ओर चिलात की तितिक्षा। उसने समभाव से उस कष्ट को सहा। ढाई
तक यह उपसर्ग चलता रहा। अन्त में वह वहां से मरकर सहस्रार नाम
देवलोक में उत्पन्न हुआ।

९. चेतन ही क्यों, जड़ भी नाचता है

संसार एक अजीब नाट्य-गृह है। यहां के कण-कण में हृदय-प्लाव
नृत्य की झांकी मिलती है। यहां पुरुष नट है और नारी नटी। सभी आते
अपना-अपना अभिनय पूरा कर चले जाते हैं। जितने अभिनेता, उतने
अभिनय। अभिनयों की समानता यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो जाती है, प
एकता नहीं दिखती। अभिनयों के प्रकार में आकाश-पाताल का अन्तर है।
तो संसार है। नृत्य की मोहिनी, हृदय की अनुरक्ति, मान का माधुर्य, स्व
की अनवरतता और अतृप्त आकांक्षाओं की मोहकता जब चेतना पर ह
होती है, तब अभिनय की अभिव्यंजना कुछ और ही प्रकार की होती है।
अभिनेता उसमें तन्मय हो जाता हैह्नअपना अस्तित्व ही भूल जाता है।

धन ने कहाह्नमेरी अभ्यर्थना कहां नहीं हुई? जिनमें चेतना का अत्य
विकास था, उनको मैंने अपने पाश में बांधा। बंधने पर भी वे अपने भुजप
में उसे लपेटे रहे और चिरकाल तक सुखाभास की मधुर अनुभूति में ख
रहे।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

असूर्यंपश्या कोमलांगी युवतियों को मैंने दुनिया दिखाई और उनके
ीत्व को क्रय-विक्रय की संकरी पगडंडी पर ला खड़ा कर दिया। मनस्वी
र्षियों का उत्कट तपोबल मेरे लुभावने चरणों पर कितनी बार नहीं लुटा!
ा-महाराजा और सम्राटों ने मेरी अभ्यर्थना इसलिए की कि मैं उनकी
क्ति का एकमात्र स्रोत था। हर्म्यवासी धन-कुबेरों ने मेरी अभ्यर्थना
लिए की कि मैं उनके अस्तित्व का आदि-अन्त था। घास-फूस की
-फूटी झोंपड़ी में चलने-फिरने वाले नर-कंकालों ने मुझे देवकुसुमवत्
लिए धारण किया कि मैं उनके आन-मान का आधार-स्तम्भ था। मैंने
द्ध करवाये तो शांति का प्रेरक भी मैं ही रहा। मैंने भ्रातृत्व व बंधुत्व आदि
ंधों को कबंध कर डाला, परन्तु कबन्ध-सम्बन्धों को भी मैंने ही सही
ंध में बदला है। मैं प्रलय का आदि रूप हूं, परन्तु सृष्टि का भी
दिबीज मैं ही हूं। मैं उपास्य हूं, उपासक हूं और उपासक की साधना भी
ही हूं। यह पवित्र त्रिवेणी की धारा अविरल बहती रही है और आज भी
जन-मानस पर अपना प्रभाव लिए चल रही है। मेरी उपासना गुणों की
ासना है। इसलिए तो कविहृदय ने कहाह्न**'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति'**। मैं
र्थ सिद्धिप्रद हूं। मैं अनाथों का नाथ, अबन्धु का बन्धु, अमित्र का मित्र
और हूं मैं एक अमृत की तरंग, जो उछलती है, फुदकती है और आकाश
छूने सतत छलांगें मारती है।

धन की इस गर्वोक्ति पर साधु-मानस कुछ विचलित हो जाता है।
तु मोहाविल सारे हृदय इसकी रसमय धारा में आकण्ठ डूबे हुए हैं और वे
यं इस धारा के आर-पार को जानने के लिए इसी की आंखों से देखते हैं।
की मदान्धता में संबंध कबन्ध हो जाते हैं। इसी तथ्य को इस कथा की
ट किरणों के माध्यम से देखें।

भयानक अंधेरी रात थी। सांय-सांय जंगल के बीच मार्ग खोजता हुआ
युवक निर्लक्ष्य चला जा रहा था। कांटों की चुभन और मार्ग में बिखरे
थरों की ठोकर से वह गिरता-पड़ता, पुनः संभलकर चलने का प्रयास कर
था। हजार प्रयत्न करने पर भी उसे मार्ग नहीं मिला। हताश हो वह पेड़
नीचे सो गया। करवटें बदलते आधी रात बीत गई। नींद नहीं आयी।
द्ध की परम शत्रु है चिन्ता। **'चिन्ता दहति सजीवम्'**ह्नचिन्ता इसे नोच-

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नोचकर खा रही थी। स्मृति के गहरे विवर्त में संचित वेदना और आनन्द
सभी कण एक-एक कर उछलने लगे।

उसे अपना बचपन याद आ गया। सोने के झूले और सोने-चांदी
खिलौनों से क्रीड़ा करने के दृश्य आंखों के सामने नाचने लगे। यौवन
मादकता, वैभव का अजस्र प्रवाह, समस्त सुख-सुविधाओं की अनुकूल
और सम्पूर्ण मंगलमय वातावरण में धन-कुबेर की इकलौती पुत्री के स
अपना परिणय, सुहागरात, चन्द्रमुखी के लुभावने हाव-भाव के सारे दृ
प्रत्यक्ष होते गए। उसने सोचाह्न'कितनी सुखी था मैं! सुरेन्द्र के सुख भी
मानवीय सुखों की तुलना में नगण्य थे। ऐसा मानकर मैंने क्या-क
सुखोपभोग नहीं किए? लक्ष्मी मेरी चेरी थी। भाई, बहन, भतीजेह्नसभी
समादर करते थे। क्योंकि मेरी प्रतिभा, अर्थार्जन की निपुणता और नेतृत्व
अटूट शक्ति, उन्हें पराभूत किए हुए थी। कुटुम्ब का प्रत्येक कार्य मेरे इं
पर चलता था। कितना सौभाग्यशाली था मैं! मैंने धन कमाना सीखा, प
साथ-साथ मैं उसे लुटाना भी जानता था। दानवीरों में मैं अग्रणी था। करो
का धन लुटाया। परन्तु हाय! निर्दयी दुर्दैव!! तेरी परछाई पड़ते ही सब
स्वप्नवत् विलीन हो गया। सर्वप्रथम तूने माता-पिता के वियोग के धधक
अंगारों पर चलाया। वैभव की अटूट धारा को तूने खण्ड-खण्ड कर दि
गगनचुम्बी अट्टालिकाओं को तूने दमड़ी के मोल बिकाया। भाई-भतीजे स
मुझे छोड़ चले गए। एकमात्र पुत्र को भी तूने छीन लिया। तू समव
कहलाता है, परन्तु मैं कैसे मानूं कि तू समवर्ती है? तेरा बर्ताव पक्षपात
नहींह्नयह कौन विज्ञ मानेगा? जो कुछ हुआ सो हुआ, परन्तु तू इतने पर
नहीं रुका। वेदना की तीव्र अनुभूतियों में भी मैं धैर्य लिए चलता रहा। प
तुझे यह नहीं रुचा। मुझे दर-दर का भिखारी बनाकर ही तूने सुख की स
ली। आज मेरे पास खाने को अन्न का एक दाना भी नहीं।

'क्या करूं? कहां जाऊं?'ह्नइसी चिंता की उधेड़बुन में वह खोया
रहा था। दुःख के दावानल में वह जल रहा था, परन्तु उस जलन
आंतरिक शून्यता नहीं थी, एक हृदय की अनुभूति थी। उसने सोचाह्नदु
अमृत है, यदि कोई उसे पचा सके। दुःख हलाहल है, इसके लिए जो
पचाना नहीं जानते। चिंता की तीखी अनुभूति में स्मृत भी विस्मृत-सा
जाता है। वह सब कुछ भूल गया। परन्तु एक बात उसे याद आयी। घर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कलते समय उसकी पत्नी ने कहा थाह्न'आपकी भगिनी आज भी ऐश्वर्य के त्र पल रही है। आप उसके पास जा कुछ सहायता मांगें। वह आपका मान करेगी और अपने पूर्व उपकारों को याद कर आपके इस दयनीय दैन्य नामशेष कर देगी।' पत्नी ने ठीक कहा था। सहायता मांगने में दोष ही ा है? वह दूसरी थोड़े ही हैह्नइस प्रकार चिंतन की धारा आगे बढ़ी। उसे ति-वाक्य याद हो आया। उसने कहाह्न'दुःखावस्था में बन्धुजन से याचना ं करनी चाहिए।' परन्तु दैन्य की दारुणता ने उसे भगिनी के गृह की ओर थान करने के लिए बाध्य किया।

सूर्योदय हुआ। वह वहां से चला। फटी हुई पगड़ी, स्यूति-संकुल यान, कन्था को लज्जित करने वाली धोती, फटे हुए जूते, म्लान ह्नइस दयनीय दशा से वह आशा और निराशा की भूमि को पार करता ा चला जा रहा था। आशा का अनुबंध मधुर होता है। इसमें शारीरिक र मानसिक सभी वेदनाएं विलीन हो जाती हैं।

सप्त-भौम हर्म्य पर उसकी बहन वासन्ती वसन्त का आनंद ले रही । सखियों और दासी-समूह से परिवृत वह नीले आकाश की शून्यता में यी जा रही थी। इतने में ही एक दासी ने उसे अंगुली-निर्देशपूर्वक बताते कहाह्न'स्वामिनी! वह देखो, आपका भाई आ रहा है।' बहन ने देखा, की आंखें फटी रह गईं। उसने यह कल्पना भी नहीं की थी उसका सहोदर दयार्द्र अवस्था में यहां आयेगा। मन में विकल्पों का ज्वार आया। उसने चाह्नइस अत्यन्त श्रीहीन व्यक्ति का भाई के रूप में सत्कार कर मैं अपने सुरालय या सखियों में हास्यास्पद कैसे बनूं?

'अरी चेटी! तू पागल है, कहां है मेरा भाई? उन्मत्त! तू अंधी है। याह्न के सूर्य के प्रखर ताप में भी तुझे नहीं दीख रहा है। लगता है, तूने दरा पी है।'

'स्वामिनी! आप कुछ भी कहें, यह आपकी इच्छा है। प्रसन्न हों थवा खिन्न, वह निश्चित ही आपका सहोदर है।'

'पगली! तू मेरे विपुल वैभवशाली पितृकुल को कलंकित करने के लिए ों उतावली हो रही है? तू मेरे सहोदर की सम्पन्नता को क्या जाने? जा, हट। आंखों के सामने मत रह।' उसने अपनी सखियों की ओर मुड़कर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कहाह्न'सखियो! इस दासी की अनर्गल बातों पर ध्यान मत देना। यह कभ
कभी उन्मत्त हो जाती है। यह जिसे मेरा सहोदर बता रही है, वह मेरे पि
के घर में 'चुल्ली-दीपक' (रसोइया) है।'

इतने में सुबन्धु अपनी बहन के द्वार पर आ पहुंचा। अपनी स्वामि
की आज्ञानुसार दासी ने उसे पशुशाला की ओर जाने का संकेत किया।
वहां गया। कुछ ही देर में दासी उनके सामने खट्टी छाछ से भरा एक सिक
और बासी रोटी का एक टुकड़ा रखकर चली गई। पशुशाला की नीरव
रोटी की कठोरता, छाछ का खट्टापन और भगिनी के प्राथमिक व्यवहार
उसका अंतःकरण रो उठा। उसने सोचाह्न'भाग्य का विपाक बड़ा विचित्र ह
है। धन क्षीण हो गया, ऐश्वर्य विलीन हो गया, भूख संतप्त कर रही
परिजन दूर चले गए हैं, कौटुम्बिक मुंह नहीं दिखाते। बहन ने भी
तिरस्कार किया। अहो! विचित्र है धन की महिमा। इसके आगे मानव
मूल्य कौड़ी जितना भी नहीं है। इसके बिना नैसर्गिक संबंध भी श्लथित
जाते हैं। चेतनाहीन होते हुए भी यह चेतनशील को निष्प्राण बना देता
हन्त! यह जड़ की महिमा है। इस सामाजिक स्थिति का अतिक्रमण कै
हो? धन-संग्रह के दोषों को जानते हुए भी मुझे उसका संग्रह करना हो
क्योंकि उसके बिना समाज में कोई गति नहीं।'

वह उठा। पशुशाला के एक ओर उस छाछ और रोटी को भूमिस
कर वहां से चलता बना।

'उद्योग कर्म में कौशल लाता है'ह्नयह सोच उसने परदेश की
प्रस्थान किया। 'उद्योगी पुरुष के पास लक्ष्मी आती है'ह्नयह सोचकर तत्क
उसने व्यवसाय प्रारम्भ किया। निपुणता से प्रचुर धन का अर्जन किया।
समय में ही पहली स्थिति को पा, समस्त कार्य-कलाप की व्यवस्था क
पुनः अपने देश को चला। बीच में वह नगरी दीखी, जहां उसकी सहो
रहती थी, जहां उस भूमि और आकाश के बीच सारी स्मृति लिखी हुई

'मदान्ध बहन ने किया सो किया। उससे मुझे क्या? बहन से मि
पुनः उसका बन्धु भी बनूं और धन के प्रदर्शन से उसकी दृष्टि को निम
करूं'ह्नयह सोचकर उसने अपने भृत्यों को भेज अपने आगमन की सूच
भिजवाई। सूचना मिलते ही बहन रोमांचित हो उठी। वह ससंभ्रम अपने भ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

चढ़ी। बहुत परिकरों से परिवृत घोड़ों के रथ पर आते हुए अपने बंधु को
ाकर वह प्रसन्न हुई। उसने अपनी सखियों को बुलाकर अंगुली के इशारे से
ने भाई को दिखाया। 'सखियो! देखा, यह है मेरा भाई। अरे, कहां गई
दिनान्धा, जिसने उस वराक को भी मेरा भाई कहा था।' इतने में भाई
उसके घर के पास आ पहुंचा। वह उसके स्वागत के लिए बाहर गई,
ापन किया और भाई को अन्दर चलने के लिए अनुरोध किया।

भाई ने कहाह्न'अभी यहां ठहरने का इच्छुक नहीं हूं, शीघ्र ही अपने घर
ना चाहता हूं। मार्ग में जाते हुए सोचा, तुझसे मिलूं, सो मिल लिया हूं।'

'बन्धो! ऐसा क्यों कहता है? क्या यहां आकर बिना भोजन किए
ा जाएगा? क्या यह उचित है? क्या तू मुझे लज्जित करना चाहता है?
जन बना हुआ है, अंदर चलह्न' भाई का हाथ खींचते हुए बहन ने कहा।

'बहन! तेरा अनुरोध मैं टाल नहीं सकता। भोजन करना ही होगा।
तु मुझे पशुशाला में ले चल। मैं यहां भोजन नहीं करूंगा।' सारी स्मृति
ताजी करते हुए भाई ने कहा।

'हाय! तुझे क्या हो गया है? क्या तू किसी आतंक से ग्रस्त है? मुझे
ड़ित मत कर। क्या मेरा भाई इस पशुगोचर में बैठेगा? यह कभी नहीं
ा। मैं अपने पितृकुल के सम्मान को इन कृत्यों के द्वारा नीचा नहीं करना
हती। जिस बहन के पास वैभव का अजस्र प्रवाह है वह अपने भाई, जो
यं लक्ष्मी-पुत्र है, को रत्नजड़ित पट्टे पर बिठाकर भोजन कराएगी। पितृकुल
वैभव नारी को अतल ऊंचाई पर चढ़ा देता हैह्नआज तू यह क्यों भूल
है?' बहन ने एक ही स्वर में कह डाला।

'नहीं, बहन! मैं तो वहीं जाऊंगा, वही मेरे लिए उचित स्थान है।'
ना कह वह पशुशाला की ओर बढ़ा। बहन ने उसे मनाया, प्रार्थना की,
ुनय-विनय किया, पर सब व्यर्थ।

सुबन्धु वहां से चलता हुआ पशुशाला में आ पहुंचा। पशुओं के
मूत्र की दुर्गन्ध से सिर फटने लगा, परन्तु उसने धैर्य नहीं खोया। एक
र बने चबूतरे पर जा बैठा। ऐश्वर्य के पीछे जैसे मदान्धता आती है, वैसे
विपुल वैभवशाली भाई की परछाई का अनुसरण करती हुई बहन भी वहां
पहुंची। थोड़ी देर में ही सोने-चांदी के बर्तनों में विविध पक्वान्नमय

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भोजन भाई के आगे प्रस्तुत किए गए। दो नौकर पंखों से हवा कर रहे
बहन ने भाई से भोजन करने के लिए अनुरोध किया। भाई ने अपने नौ
द्वारा लाए गए रुपये, मोती, हीरे, मणि आदि से भरे हुए पात्रों को आगे
उन्हें भोजन करने के लिए आदेश दिया।

'भाई! आज तू निश्चित ही पागल हो गया है। क्या ये भी भो
करेंगे?' बहन ने मुस्कराते हुए कहा।

'हां बहन! यह भोजन इस ऐश्वर्य के अधिकार का ही है, दूसरा क
करेगा?' भाई ने गम्भीर होते हुए कहा।

'भाई! मैं यह नहीं समझ सकी, तेरा आशय क्या है? तू पागल
तरह क्यों बातें कर रहा है?' बहन ने अपने पूर्वाचरित को भूलते हुए क

'भगिनी! मैं मत्त नहीं हुआ हूं, सत्य कह रहा हूं। मुझे कौन जिमा
यह तो इनका सत्कार है, इनका सम्मान है, इनकी ही कृपा मानता हूं, जि
पुनः मैं तेरा भाई हो सका हूं। क्या वह दिन भूल गई, जिस दिन
रसोइया कहकर बहुत प्रसन्न हो रही थी। यह वही पशुशाला है, जिसमें
बिठाया गया था और मिट्टी के सिकोरे में खट्टी छाछ और सूखी रोटी परो
गई थी।' उसने उठकर संकेतित भूमि को खोदकर वह सिकोरा उसके सा
ला रखा।

भाई के अप्रत्याशित तीखे वचनों से उसका पाषाण-हृदय बिंधा जा
था। लोभ के पाषाण-हृदय पर बाणों की बौछार हो रही थी। एक ओर क
कटु शब्दों से उसका मन पीड़ित हो रहा था तो दूसरी ओर स्वयं के आच
की स्मृति उसे नोंच-नोंचकर खा रही थी। वह सिर नीचा किए पृथ्वी में स
जाने की बाट देख रही थी। भाई ने आगे कहाह्न'बहन! यह लक्ष्मी बाद
की छाया है। कभी किसी प्रदेश को आवृत करती है और कभी किसी क
इसका क्या अभिमान, क्या मदान्धता? तुमने अपने निर्धन बन्धु का इ
अपमान किया, जिसकी आशा नहीं की जा सकती थी। बहन, वसन्त
लहलहाने वाले वृक्षों को भी पतझड़ का सामना करना पड़ता है। भला
नाट्य-गृह में किस व्यक्ति की एक-सी दशा रही है? कौन अभिनेता ए
सा अभिनय कर रहा है? बहन! तुमने अपने भगिनीत्व को दूषित किया
यह मेरा तुम्हारा अन्तिम मिलन है। सुख से रहो, मैं अपने घर जा रहा ह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१०. सोने के यव

गुरुदेव! मुझे अकेले विचरण करने की आज्ञा दीजिए। 'वत्स! अभी ं। तुझे एक वर्ष तक गुरुकुल में ही रहकर परम्पराओं का ज्ञान करना ा। एकल विहार के लिए मर्यादाएं हैंह्नजब तू उन मर्यादाओं में स्वतंत्र हो एगा तब तुझे आज्ञा दी जाएगी। जाओ, वत्स! साधना करो।' कहते हुए ोवृद्ध तपस्वी मुनि ने हल्की सी मुस्कान के साथ अपना वरदहस्त शिष्य रख दिया। गुरुवात्सल्य से आप्लावित शिष्य का हृदय गद्गद हो उठा। चरणों में प्रणाम कर वह अपने स्वाध्याय-कक्ष की ओर चल पड़ा। गुरुजी भाव मुखाकृति पर जम गये, सोचाह्न'शिष्य होनहार है, साधनातत्पर है, न्तु इसे अभी आज्ञा कैसे दी जाए, मर्यादाएं जो रही.....।

समय बीतने लगा। अध्ययन चालू रहा। बारह महिनों के बाद..... स! एकल विहार के लिए तैयार हो जाओ। अब साधना का परिपाक हो ा है। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम एकल-विहारी बन सर्वजनहिताय की धना में तन-मन से लग जाओ।'ह्नगुरुजी ने अपररात्र में अपने शिष्य से ा।

'गुरुदेव! जैसी आज्ञा.....आशीर्वाद दीजिए भगवन्!'ह्नप्रणाम करते हुए ष्य ने कहा।

'वत्स! सुखे-सुखे जाओ। '**जाय सद्धाए णिक्खंतो..... तमेव गुपालेज्जा**'ह्न अपने नियमों में दृढ़ रहना, परीषहों में डिग मत जानाह्नकष्ट-धना की सही कसौटी है।'

गुरुआज्ञा को शिरोधार्य कर मुनि अज्ञात दिशा की ओर अकेले चल । धर्मप्रेमी जनता ने उनका स्वागत किया और उनकी चर्या की प्रशंसा । ग्रामानुग्राम विचरण करते करते एकदा 'राजगृह' नगरी में पधारे। उद्यान ठहरे। अपनी आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त हो भिक्षा के लिए गांव की र चल पड़े। जिस गली से जाते भक्तजन झुंड के झुंड 'पधारो-पधारो' की नि से स्वागत करते। किन्तु.....आगे चलते ही गये। एक सुनार की हाट जा रुके।

स्वर्णकार राजा श्रेणिक का एक विश्वस्त व्यक्ति था। उसकी ाणिकता और सचाई की चर्चा शहरभर में थी। आज वह राजा श्रेणिक के

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आज्ञानुसार सोने के 'यव' बना रहा था। अपने कार्य में इतना तल्लीन था
सामने खड़े हुए मुनि उसकी नजर में नहीं आये। किन्तु कार्यवश ज्योंही उ
ऊपर देखाह्नसामने खड़ी हुई दिव्य मूर्ति को देखकर वह उठ खड़ा हुअ
दोनों हाथजोड़ बोलाह्न'पधारो गुरुदेव! अन्दर पधारो।' मुनि के हाथ में झो
देखकर उसे यह समझने में देरी नहीं लगी कि मुनिश्री भिक्षा के लिए अ
हैं। उसने कहाह्न'मुनिवर! आप कुछ क्षणों के लिए यहां रुके। मैं देख अ
कि भिक्षा की सामग्री तैयार है या नहीं। मैं जैन भिक्षाचरी के नियमों
जानता हूं।' इतना कह वह अन्दर चला गया।

मुनि हाट में अकेले खड़े हैं। इतने में एक उड़ता हुआ क्रौंचपक्षी व
आया और सोने के यवों को धान के दाने समझकर निगल गया। दाने भ
होने के कारण वह उड़ नहीं सका। हाट के एक कोने में जा बैठा। मुनि
सब कुछ देखा, किन्तु.....

स्वर्णकार रसोईघर से हंसता हुआ बाहर आया और हाथजोड़ अ
कीह्न'मुनिवर! पधारिये, मुझे भिक्षा का लाभ दीजिए.....अरे! यह क्य
स्वर्ण के वे 'यव' कहां गये.....उसके होश गुम हो गये। सारी हाट ह
डाली, किन्तु उसे वे 'यव' नजर नहीं आये। सोचाह्नशायद कोई उठाकर
गया होगाह्नमुनि से उसने पूछा। मुनि मौन थे। वे कहे भी तो क्या? स
कह देने पर उस पक्षी की हत्या संभव थी और अन्यथा कहने पर स्व-मय
का लोप होता था। इस स्थिति में मौन ही श्रेयस्कर हैह्नऐसा समझकर मु
बोले नहीं। स्वर्णकार नम्रता से बार-बार मुनि से पूछता रहा, किन्तु
व्यर्थ। मुनि शान्त थे।

स्वर्णकार का सन्देह बढ़ता गया। कल्पना के जाल बुनने लगा। मन
मन सोचाह्न'क्या जैन मुनि इस प्रकार की जघन्यता कर सकते हैं? हा
कितनी विडम्बना! शिर मुंडा लेने पर भी मन का मुंडन कितना दुष्कर
हाय रे लोभ! तेरे कारण कितने पथभ्रष्ट नहीं हुए। साधानारत मुनि भी
तुच्छ दानों के लिए अपनी साधना को तिलांजलि दे देते हैं, इससे बढ़
और क्या आत्म-वंचना हो सकती है।.....

अरे! नहीं नहीं, जैन मुनि ऐसा नहीं करते। मैं कितना नीच हूं कि इस प्र
की जघन्य कल्पना कर रहा हूं।'ह्नइस प्रकार वह मुनि पर रोष और सहानुभ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पोषण करता हुआ एक क्षणभर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ बन गया।

किन्तु होता वही है जो होना होता है। क्रौंचपक्षी कोने में बैठा है। मुनि न खड़े हैं। स्वर्णकार रोष में तिलमिला रहा हैह्वनाना विकल्पों के बाद ने यह तय कर लिया कि 'मुनि ने ही यवों की चोरी की है।' फिर नम्रता पूछाह्वधमकी दी, किन्तु मुनि मौन थेह्वअब स्वर्णकार से रहा नहीं गया। ने कहाह्व'रे मोडे! या तो चोरी स्वीकार करले या मरने के लिए तैयार हो । मैं जान गया हूं कि चोरी तूने ही की है।'

मुनि ज्यों के त्यों निश्चल खड़े थेह्वआज साधना की परीक्षा थी। पत्ति न आए तब तक भले ही कोई व्यक्ति अपने आपको निर्भीक या भय कह सकता है, किन्तु उसकी कसौटी उस समय नहीं होती। वह होती कष्टों के आगमन पर।

स्वर्णकार का क्रोध सीमा को पार कर गया। वह तत्काल मृतपशु के ड़े की एक पट्टी लेकर मुनि के पास आया और देखते-देखते मुनि के शाल भाल पर बांध दी। ज्यों समय बीतने लगा त्यों पट्टी सिकुड़ने ीह्वअसह्य वेदना हुई, किन्तु आत्मसाधक के लिए वह वेदना तुच्छ थी। वे ते थेह्व'आत्मा तो इस वेदना को समता से सहन करने पर पवित्र गीह्वशरीर गलता है तो भले ही गले, यह पराया है मेरा नहीं।'

इस प्रकार मुनि अनित्य भावना में आगे बढ़ते हुए अपने कर्म-पाश को थिल कर रहे थे। उधर स्वर्णकार मुनि की वेदना देख रहा था। दोनों के चय अचल थे। अन्तर केवल सत् और असत् का ही था।

कुछ समय बीता। परिस्थिति बदली। एक लकड़हारा मोटा सा लकड़ी भारा लिए स्वर्णकार की हाट पर आ पहुंचा। मूल्य तय हो जाने के बाद लकड़ी का भारा लिए चौक में पहुंचा और 'धड़ाम' से उसे जमीन पर क दिया। आवाज सुनते ही क्रौंचपक्षी के शरीर में कम्पन हुआ और वे के सारे स्वर्ण के 'यव' बाहर आ गिरे। क्रौंचपक्षी उड़ गया। स्वर्णकार ने सब देखा। सारी स्थिति समझ में आ गई।

दौड़ा-दौड़ा वह मुनि के पास आया। किन्तु अनित्य भावना में विचरण ते हुए मुनि के 'प्राण पखेरू' तब तक उड़ गये थे।

ये थे जैनपरम्परा के विशेष मुनि 'मेतार्य'।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

११. धन : अनर्थ का मूल

दो भाई थे। वे धन कमाने सौराष्ट्र गए। एक वर्ष में एक हजार रु कमाए। उन्हें एक नोली में रख, वे अपने घर आ रहे थे। दोनों बारी-बारी नोली लेते। जब एक के पास वह नोली होती तब दूसरा सोचता कि मारकर नोली को मैं क्यों नहीं ले लूं। दोनों के मन में एक-दूसरे को मारने अशुभ परिणाम आये।

वे अपने गांव के पास आये। बड़े भाई के पास नोली थी। उ सोचाह्वधिक्कार है मुझे, थोड़े से धन के लिए मैं अपने जन्मजात भाई हत्या करने की सोच रहा हूं। उसे दुःख हुआ। उसने छोटे भाई से सारी स्पष्ट कह डाली। छोटे भाई ने कहाह्वमेरे मन में भी कुछ ऐसे विचार आ रहे हैं।

दोनों ने सोचाह्वधन अनर्थ का मूल है। सारे दोष इसी से पैदा होते उन्होंने उस नोली को एक नदी में डाल दिया। नदी में गिरते ही एक मछ ने उस नोली को निगल लिया।

एक मछलीमार आया। उसने कई मछलियां पकड़ीं। वह उन्हें बाजार बेचने गया।

दोनों भाई घर पहुंचे। बूढ़ी मां बहुत ही खुश हुई। उसने अपनी बेटी कहाह्व'तुम्हारे भाई आए हैं। बाजार से मछली ले आओ। उसी का भो बनाओ।'

वह दौड़ी-दौड़ी बाजार गई। एक मछली खरीद कर घर ले आयी। बाहर बैठी अपने बेटों से बात कर रही थी। बेटी ने उस मछली को का अन्दर से नोली निकली। लोभ बढ़ाह्वयदि मैं इसे छिपा लूंगी तो यह मेरी जाएगी। यह सोच उसने उसे छिपा लिया।

मां ने उसे छिपाते देख लिया था। वह अन्दर आयी। बेटी पूछाह्व'तेरी गोद में क्या है?' कुछ नहीं, वह बोली।

मां ने फिर पूछा। पर वह बोली नहीं। मां को क्रोध आया। उ अपनी बेटी के मर्म-प्रदेश में जोर से प्रहार किया। वह उसी क्षण मर गई

दोनों भाई अन्दर आये। बहन भूमि पर मरी पड़ी थी। उसके पास

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नोली भी पड़ी थी। उन्हें विस्मय हुआ। सोचा, इसी धन ने हमारी बहन प्राण लिए हैं। यह अनर्थ की जड़ है।

उन्हें वैराग्य हुआ। संसार की विचित्रता का अनुभव किया। वे दोनों क्षित हो गये।

१२. वन्दनीय कौन ?

किसी नगर में एक तपस्वी साधु रहते थे। उनके एक शिष्य था। क बार वे अपने शिष्य को साथ ले भिक्षा लेने निकले। रास्ते में उनके के नीचे एक छोटा-सा मेंढक आ गया। पैर पड़ते ही वह मर गया। ष्य ने यह देखा। उसने अपने गुरु से कहाह्न'आपके पैरों से एक मेंढक मर ा।'

गुरु ने कहाह्न'नहीं, वह तो पहले से ही मरा पड़ा था, मैंने नहीं मारा।' ष्य चुप रह गया।

सायंकाल का समय था। प्रतिक्रमण की वेला थी। गुरु ने आलोचना ं की। शिष्य ने सहजभाव से कहाह्न'कृपा कर मेंढक की आलोचना करना भूलें।' गुरु ने सुना-अनसुना कर दिया। शिष्य ने फिर कहा। गुरु बोले ं। शिष्य ने फिर अत्यन्त विनम्र शब्दों में कहा। गुरु को क्रोध आ गया। आगबबूला हो उठे और कहाह्न'तू मुझे शिक्षा दे रहा है दुष्ट कहीं का!' कह रजोहरण ले उसके पीछे दौड़े। रात का समय था। स्पष्ट दीखा नहीं। व में ही एक पत्थर के खम्भे से सिर टकरा गया। वे मर गये। ज्योतिष ों में जा उत्पन्न हुए। वहां से च्युत हो दृष्टिविष सर्प-योनि में उत्पन्न हुए। ों जंगल में रहते। नगर में नहीं जाते।

उस नगर का अधिपति एक राजा था। उसके एक पुत्र था। एक बार क सर्प ने राजपुत्र को डस लिया। सारे राज्य में शोक छा गया। वैद्यों का ाज निष्फल गया। मांत्रिकों के मंत्र बेकार हुए। राजा ने सभी गारुड़िकों पेरों) को बुला भेजा। वे आये। उन्होंने अपनी सर्प विद्याओं से सर्पों का ह्वान किया। सभी सर्प मंडल में आये। मुख्य गारुड़िक ने सर्पों से ाह्न'जिसने राजपुत्र को डसा है, वह यहीं इस मंडल में ठहरे और बाकी के चले जाएं।' सारे सर्प चले गये। एक सर्प मंडल में ठहरा। गारुड़िक ने

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उस सर्प से कहाह्न'तुमने राजपुत्र को डसा है, या तो तुम अपना विष वा
पी लो या इस अग्नि में कूद पड़ो।'

वह अगंधन कुल का सर्प था। इस कुल के सर्प वमन किए हुए
को वापिस नहीं पीते। वह अग्नि में कूद पड़ा। जलकर भस्म हो गया।
के मरते ही राजपुत्र भी मर गया।

राजपुत्र के मरते ही रनिवास में कोलाहल छा गया। राजा क्रोधित
गया। सर्पों के प्रति उसके मन में रोष उमड़ आया। उसने घोषणा करवाई
'जो मुझे सांप का सिर लाकर देगा, मैं उसे प्रति सिर एक-एक सोने की
दूंगा।' लोगों ने यह सुना। धन के लोभ से वे सांपों को मारने लगे।

वह दृष्टिविष सर्प (गुरु का जीव) भय के मारे दिन में बाहर
आता। रात को बाहर निकलता, इधर-उधर घूम वापस बिल में चला जा
सर्पों को ढूंढते-ढूंढते लोग वहां भी आ गये। रात्रिचरों ने उसका बिल
लिया। उस पर कुछ औषधि रखी। वह बाहर आने के लिए बाधित हु
उसने सोचाह्न'मैंने क्रोध का विपाक देख लिया। यदि मैं अभिमुख ब
निकलता हूं तो मेरी दृष्टि पड़ते ही बाहरवाले मर जाएंगे। मैं ऐसा पाप
करूं?' यह सोच उसने पिछले भाग से निकलना शुरू किया। पहले
बाहर निकाली। गारुड़िकों ने पूंछ काट ली। फिर ज्यों-ज्यों निकला त्यों-
उसके टुकड़े कर दिये। ज्योंही उसका सिर काटा त्योंही एक देवी ने उसे
लिया।

पिछली रात का समय था। राजा सुख की नींद सो रहा था। स्वप्न
उसे एक देवता दीखा। देवता ने कहाह्न'राजन्! सर्पों को मरवाना छोड़ दे।
घर पुत्र का जन्म होगा, यह मैं वरदान देता हूं। पुत्र का नाम 'नागदत्त' रखन

वह दृष्टिविष सर्प मरकर उसी राजा के घर पुत्ररूप में उत्पन्न हु
सारे गांव में खुशियां मनाई गई। उसका नाम 'नागदत्त' रखा गया। वह छ
अवस्था में ही दीक्षित हो गया।

पूर्वजन्म में वह तिर्यंचयोनि में था, इसलिए उसे भूख बहुत अधि
लगती। वह तपस्या नहीं करता, किन्तु सारे दिन उपशांत रहता तथा धर्म
संस्थित हो आत्म-रमण करता। वह जिस गच्छ में था उसमें चार श्रमण
थे। चारों तपस्वी थे। एक चार माह की तपस्या करता, दूसरा तीन मास

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रा दो मास की और चौथा एक मास की। वे इतने-इतने महीनों का तर डाल भोजन करते।

एक बार एक रात में एक देवी वन्दना करने आयी। क्रमशः चारों स्वी उठे। अन्त में क्षुल्लक उठा, देवी ने चारों का अतिक्रमण कर ल्लक को वन्दना की। तपस्वी साधुओं को यह व्यवहार बुरा लगा। वे ठ गये। चातुर्मासिक तपस्वी ने देवी से पूछाह्न'यह कैसा व्यवहार? हम नी घोर तपस्या कर रहे हैं, हमें छोड़ रसलोलुप प्रतिदिनभोजी को वन्दना ना कहां तक उचित है?'

देवी ने कहाह्न'हम भाव-श्रमण को वन्दना करती हैं। जो पूजा-सत्कार परे है। जो इनकी सतत कामना करते हैं तथा अभिमानी हैं, उन्हें हम कभी दना नहीं करतीं।'

तपस्वी साधु उस क्षुल्लक साधु के प्रति ईर्ष्या रखने लगे। देवी ने चाह्नये इसका तिरस्कार न कर बैठें, ऐसा उपाय करना चाहिए। वह उसी पास रहने लगी।

दूसरे दिन क्षुल्लक भिक्षा के लिए गया। कुछ भोजन ले आया। अपनी धि के अनुसार उसने बड़े साधुओं को भोजन के लिए बुलाया। सर्वप्रथम तुर्मासिक तपस्यावाले आये। मन में ईर्ष्या तो थी ही। उन्होंने भोजन के ा में थूक डाला। क्षुल्लक को तनिक भी क्रोध नहीं आया। वहीं उसी क्षण यजोड़ बोलाह्न'मुझे क्षमा करें। मैं आपके इंगित को समझ नहीं सका। ने के लिए समय पर पात्र नहीं ला सका।' बाकी के तीनों तपस्वियों ने ऐसा ही किया, किन्तु क्षुल्लक विचलित नहीं हुआ। सभी से पहले की ह क्षमायाचना की। चारों तपस्वी उसके धैर्य को देख स्तम्भित रह गये। क्रो अपने आप पर दुःख हुआ।

उन्होंने सोचाह्नहम तो केवल शरीर को तपानेवाली तपस्या करते हैं। स्तव में सच्चा तपस्वी यह क्षुल्लक है, जो अपने अन्तर को तपा रहा है। ई सत्य का भान हुआ। ईर्ष्या मिट गई। प्रेम उमड़ आया। क्षुल्लक को लगाया और अपनी भूल स्वीकार की।

देवी फिर प्रकट हुई। उसने तपस्वियों से पूछाह्न'वन्दना किसे करनी हिए?'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उन्होंने कहाह्न'जिसने क्रोध को जीत लिया है वही वन्दनीय है
क्षुल्लक ने क्रोध को जीत लिया था। शनैः-शनैः उसके कर्म नष्ट होते ग
वह केवली बन गया।

१३. अभयकुमार का चातुर्य

एक भंगिन गर्भवती थी। उसे आम खाने का दोहद (तीव्र इच्छ
उत्पन्न हुआ। उसने अपने पति से कहा।

उस समय आम का मौसम नहीं था। पति को चिन्ता हुई। उसने से
और एक उपाय ढूंढ निकाला। राजा श्रेणिक के अंतःपुर के बगीचे में आम
वृक्ष थे। वे बारह मास फलों से लदे रहते थे। भंगी वहां गया। बगीचे
अन्दर उसे कौन जाने देता! वह बाहर खड़ा रहा। वह अवनामिनी
उन्नामिनी विद्याएं जानता था। अवनामिनी विद्या से उसने वृक्ष की डा
झुकाई, दो-चार आम तोड़े और उन्नामिनी विद्या से डाली वापिस ऊपर
दी। भंगिन को आम मिल गये।

प्रातःकाल राजा बगीचे में घूमने गया। वह जान गया कि कुछ आ
चोरी गये हैं। उसने सोचाह्नऐसा कौन व्यक्ति है जो मेरे अन्तःपुर में अ
है? इसकी जांच करनी चाहिए। उसने अभयकुमार को बुलाया
कहाह्न'यदि तुम सात दिन की अवधि में चोर को उपस्थित नहीं करोगे
तुम्हें प्राणदण्ड दिया जाएगा।'

अभयकुमार चोर की गवेषणा करने लगा। चार दिन बीते। पांचवें
वह जाते-जाते एक जगह पहुंचा, वहां बहुत लोग इकट्ठे हो रहे थे। वहां बै
को लड़ाया जा रहा था। लोग उत्सुकता से बैठे थे। अभयकुमार ने लोगों
कहाह्न'भाइयो! जब तक दोनों बैल लड़ने के लिए तैयार न हों तब तक
एक कहानी सुनाना चाहता हूं। आप सब सुनें।'

लोगों ने बात मान ली। अभयकुमार ने कहाह्न

'एक नगर में एक सेठ रहता था। वह दरिद्र था। उसके एक पुत्री थ
वह बहुत रूपवती थी। वह अविवाहिता थी। पिता वर की खोज कर
परन्तु वह निर्धन था। इसलिए उसकी लड़की के साथ कोई विवाह करने

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ी नहीं होता था। लड़की प्रतिदिन कामदेव की पूजा करती और 'वर' ाती। प्रतिदिन वह एक बगीचे से फूल चुरा लाती और तन्मयता से अर्चना ती।

कई दिन बीते। बागवान ने उसे चोरी करते देख लिया। मौका पा उसे ड़ा। वह सकपका गई। उसने कहाह्नमैं अब से चोरी नहीं करूंगी। मुझे मारो, छोड़ दो। माली ने कहाह्नएक शर्त पर मैं तुझे छोड़ सकता हूं कि वाह के पहले दिन (सुहागरात) अपने पति के पास जाने से पहले तू मेरे आए। लड़की ने 'हां' भर ली।

शुभ मुहूर्त्त में लड़की का विवाह हुआ। उसने अपने पति से सारी बात ी। पति ने कहाह्नजाओ, अपने वचन का पालन करो। वह आगे चली। ते में एक राक्षस ने उसे पकड़ लिया। राक्षस भूखा था। वह उसे खाना हता था। लड़की ने अपनी प्रतिज्ञा उससे कही। उसने भी उसे छोड़ दिया। गे चलते ही कई चोर मिले। वे उसे अपने घर ले जाना चाहते थे, किन्तु की बात सुन वे पिघल गये और उसे छोड़ दिया। वहां से वह माली के स पहुंची। माली ने सारी बात याद कर उसकी सत्यवादिता से खुश हो उसके पति के पास भेज दिया।'

अभयकुमार ने उपस्थित लोगों से पूछाह्न'यह कहानी है। इसके पात्रों में सने सत्कार्य किया? यह आप बताएं।'

जो ईष्यालु थे उन्होंने कहाह्नपति ने।

जो भूखे थे उन्होंने कहाह्नराक्षस ने।

जो व्यभिचारी थे उन्होंने कहाह्नमाली ने।

और केवल हरिसेण ने कहाह्नचोर ने।

अभयकुमार का उपाय सफल हुआ। उसने उसे पकड़ लिया।

श्रेणिक के सामने हरिसेण को उपस्थित किया। राजा ने उससे पूछा। र ने सारी बात कह सुनाई। अपराध स्वीकार किया। राजा ने कहाह्न'तुमने री की है। इसकी सजा है मृत्युदण्ड। यह तुम्हें भुगतना पड़ेगा। परन्तु यदि अपनी दोनों विद्याएं सिखाओगे तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगा।'

चोर प्रसन्न हुआ और विद्याएं सिखाने की 'हां' भर ली।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

राजा सिंहासन पर बैठा था, हरिसेण नीचे भूमि पर। विद्या पढ़ानी श
की, किन्तु राजा उसे समझ नहीं सका। पूरा प्रयत्न करने पर भी वह उसे ज
नहीं सका। राजा ने कहाह्न'अभयकुमार! विद्या क्यों नहीं आती?' 'अ
विद्या लेने वाले ऊंचे बैठे हैं और यह विद्या देने वाला नीचे। यह मैं मान
हूं कि आप इस देश के अधिपति हैं और यह एक अकिंचन चाण्डाल। वि
विद्या देने-लेने के प्रसंग पर आज आप गुरु-शिष्य हैं।'

अभयकुमार की बात राजा को जंची। वह अपने सिंहासन से न
उतरा। चाण्डाल को ऊपर बिठा, खुद नीचे जमीन पर बैठ गया। विद्या सह
में आने लगी। थोड़े ही समय में उसने उसे सिद्ध कर लिया।

१४. मुनि मनक

सुधर्मा स्वामी भगवान् महावीर के पांचवें गणधर थे। उनके बाद ज
स्वामी हुए। उनके निर्वाण के बाद आचार्य प्रभव संघ के अधिपति बने। प
बार उनके मन में यह चिन्ता हुई कि 'मेरे पीछे आचार्य कौन होगा?' उन
अपने साधु-संघ को देखा। इस गुरुतर भार को वहन करने वाला यहां क
नजर नहीं आया। चिन्तन चालू रहा। आखिर उन्होंने देखा कि राजगृह
'शय्यंभव' ब्राह्मण उनका उत्तराधिकारी बनने योग्य है। उन्होंने अपने
शिष्यों को बुला भेजा और कहाह्न'तुम राजगृह जाओ और शय्यंभव
यज्ञवाट से भिक्षा ले आओ। यदि वह भिक्षा न दे तो यह कहकर लौट आ
किह्न'खेद है, तत्त्व नहीं जाना जा रहा है'।'

दोनों शिष्य वहां गए। भिक्षा न देने पर उन्होंने कहाह्न'यह दुःख
बात है कि तत्त्व नहीं जाना जा रहा है।'

यज्ञवाट के दरवाजे पर बैठे शय्यंभव ने यह सुना। उसने सोचाह्न'ये स
उपशांत हैं, तपस्वी हैं। ये झूठ नहीं बोलते। क्या मैं अभी तक तत्त्व न
जान पाया? उसे शंका हुई। वह अपने अध्यापक के पास आया और उ
पूछाह्न'तत्त्व क्या है?'

अध्यापक ने कहाह्न'वेद ही तत्त्व है।'

शय्यंभव को यह नहीं जंचा। उसने अपनी तलवार बाहर निकालते

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ाह्न'यदि मुझे आप सही-सही तत्त्व नहीं बताएंगे तो मैं आपका सिर काट लूंगा।' अध्यापक कुछ डरा। उसने कहाह्न'इस यूप स्तम्भ के नीचे अरिहन्त की एक रत्नमयी प्रतिमा है। वह शाश्वती है। अर्हत् प्ररूपित धर्म ही चा तत्त्व है।' शय्यंभव को संतोष हुआ। वह अध्यापक के पैरों में गिर ा। यज्ञवाट की समूची जमीन उन्हें दे वह दोनों साधुओं की खोज में कल पड़ा। वे अपने आचार्य प्रभव के पास पहुंचे गये थे। वह भी वहां या। आचार्य को वन्दना कर पूछाह्न'मुझे धर्म का रहस्य बताइये।'

आचार्य प्रभव ने उसे पहचाना और साधु धर्म का मर्म समझाया। यंभव प्रव्रजित हुए। वे चौदह पूर्वधर बने।

जब इन्होंने दीक्षा ली तब उनकी स्त्री गर्भवती थी। कौटुम्बिक लोग तेह्न'यह अपनी तरुण स्त्री को छोड़ साधु बना है। यह अपुत्र है।'

उसकी स्त्री से पूछतेह्न'क्या तू गर्भवती है?'

वह कहतीह्न'मनाग् (थोड़ा) आभास होता है।'

यथासमय उसने एक पुत्र को जन्म दिया। बारह दिन पूर्ण होने पर का नाम संस्कार हुआ। गर्भावस्था में लोगों के पूछने पर वह तीह्नमनाग् (थोड़ा) आभास होता है, इसलिए उसका नाम 'मनक' रखा।

मनक आठ वर्ष का हो चुका था। एक बार उसने अपनी मां से ाह्न'मां! मेरे पिता कौन हैं?'

उसने कहाह्न'तेरे पिता प्रव्रजित हो गए।'

वह अपने पिता की खोज में घर से निकला।

उन दिनों आचार्य शय्यंभव स्वामी चम्पापुरी में विहार कर रहे थे। क वहां पहुंचा। वह गांव के बाहर ठहरा। आचार्य शौचार्थ बाहर जा रहे मनक ने उन्हें देख वन्दना की, बालक को देखते ही आचार्य के मन में उमड़ आया। बालक का मन भी प्रेम से गद्गद हो गया। आचार्य ने ाह्न'तुम कहां से आये हो?'

मनकह्नराजगृह से।

आचार्यह्नकिसके पुत्र या पौत्र हो? यहां क्यों आये हो?

मनकह्नमेरे पिता का नाम शय्यंभव है, उन्होंने दीक्षा ले ली। मैं उनसे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मिलने आया हूं। मैं दीक्षा लेना चाहता हूं। क्या आप उन्हें जानते हैं?

आचार्यह्हां, मैं उन्हें भली-भांति जानता हूं। वे मेरे से अभिन्न हैं। मेरे पास दीक्षा ले लो।

मनकह्हां, मैं ऐसा ही करूंगा।

मुनि अपने स्थान पर आये। कुछ सोचा और उसे दीक्षित कर दि उन्होंने अपनी योग्य दृष्टि से देखा कि इसकी आयु केवल छह मास बाकी रही है। इतने अल्प-काल में इसे विधिपूर्वक सारे शास्त्रों का अध्य नहीं कराया जा सकता। इसलिए मुझे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि अल्प-अवधि में भी यह सम्यग्-ज्ञान-दर्शन-चारित्र का पूर्ण अनुष्ठान सके।

ऐसा विचार कर आगम के 'पूर्व' भाग से आवश्यक अंग उद्धृत एक शास्त्र रचा। उसके दस अध्ययन हुए और उसकी पूर्ति विकाल वेला हुई, इसलिए उसका नाम 'दशवैकालिक सूत्र' रखा।

१५. अभयकुमार की दूरदर्शिता

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी रानी का न चेलना था।

एक बार भगवान् महावीर राजगृह पधारे। महारानी चेलना भगवान् दर्शनार्थ गई। माघ का महीना था। बहुत जोरों की सर्दी पड़ती थी। वहां लौटते हुए वैकालिक वेला (सन्ध्या) हो गई। चेलना ने मार्ग में अवस्थि एक श्रमण को देखा। वह बहुत कठोर तपस्या कर रहा था। उसने क प्रतिमा स्वीकार कर ली थी। रानी के मन में कम्पन हुआ। मार्ग में उ श्रमण का ध्यान करती हुई वह अपने महलों में आ पहुंची।

रात्रि का समय था। रानी महल में आकर सो गई। संयोगवश रानी हाथ पलंग के नीचे लटक गया। ठंड ज्यादा थी। हाथ अकड़ गया। अस वेदना होने से रानी जाग उठी। उसने एक अंगीठी मंगवाई और अपना ह उस पर तपाया। हाथ में तनाव से सारा शरीर ठिठर गया था। आंच से उ कुछ चेतना आई। सहसा उसे खुले आकाश में वृक्ष के नीचे बैठे तप

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

धु की याद आ गई। उसके मुंह से सहसा निकल पड़ाह्न'वह तपस्वी अब ा करेगा ?' राजा श्रेणिक ने यह बात सुनी। उसे रानी के चरित्र पर सन्देह ा। उसने सोचाह्नहो न हो, अवश्य कोई बात है। रानी ने किसी पर-पुरुष संकेत-स्थान पर पहुंचने का वचन दिया है।

राजा को बहुत क्रोध आया। उसने अभयकुमार को बुलाकर ाह्न'जाओ, शीघ्र ही सारे अंतःपुर को जला डालो।' अभयकुमार आज्ञा कर अवाक् रह गया।

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक भगवान् महावीर के समवसरण में पहुंचा। चन चालू था। धर्म-देशना पूरी हो जाने पर श्रेणिक ने भगवान् से ाह्न'भगवन्! चेलना पतिव्रता है या नहीं?' भगवान् ने कहाह्न'राजन्! वह व्रता है।' भगवान् का उत्तर सुनते ही वह व्याकुल हो उठा। भगवान् के नों पर उसे पूर्ण श्रद्धा थी। उसने सोचा कि अभयकुमार ने कहीं सारा तःपुर भस्म न कर डाला हो। वह आकुल-व्याकुल हो शीघ्रता से अपने लों में लौट आया।

श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाकर कहाह्न'क्या तुमने अंतःपुर में आग ा दी?' अभयकुमार ने कहाह्न'हां, महाराज! मैंने आपकी आज्ञा के ुसार ही किया है।' श्रेणिक का पारा चढ़ गया। उसने अतिरोष में ाह्न'शर्म नहीं आती, तुम भी उसी में क्यों न जल मरे?' अभयकुमार ने ाह्न'राजन्! अग्नि-प्रवेश से क्या लाभ?' मैं तो अब दीक्षा लेने की तैयारी रहा हूं। आप निश्चिन्त रहें। मैंने आपके अंतःपुर को नहीं जलाया है। ाज्ञा शिरोधार्य करने के लिए केवल एक हस्तिशाला जला दी गई थी।'

राजा अभयकुमार की दूरदर्शिता पर मुग्ध हो गया। अभयकुमार को ग्य हो चुका था। भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण कर वे आत्मलीन गए।

१६. रहस्य जो नहीं खुला

ध्यान संप्रदाय का एक संन्यासी 'मौनी साधक' के नाम से प्रसिद्ध था। निरा बुद्धू और ठग था। अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए उसने दो ंचारी नियुक्त कर रखे थे, जो आगन्तुक उपासकों को आडम्बर दिखा कर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ठगा करते थे। इस मौनी साधक के वे प्रतिनिधि बनकर आगन्तुक व्यक्ति के प्रश्नों को समाहित करते और अपने गुरु की प्रतिष्ठा बढ़ाते थे।

एक बार वे दोनों उत्तर साधक कार्यवश अन्यत्र गए हुए थे। मौ साधक अकेला बैठा था। इतने में ही एक उपासक वहां आया। मौनी साध की पूजा-अर्चा कर बोलाह्नभंते! बुद्ध क्या है? मौनी साधक असमंजस पड़ गया। वह निरा भट्टाचार्य था। उत्तर नहीं सूझा। तब उसने ऊपर देख नीचे देखा, चारों ओर देखा और किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर बैठा रहा। आगन्तु उपासक को उत्तर मिल गया। उसने दूसरा प्रश्न कियाह्नभंते! धर्म क्या है वह प्रश्न भी उलझन-भरा था। मौनी साधक ने एक बार ऊपर देखा और फि बार नीचे, ताकि स्वर्ग से या नरक से सहायता मिल सके। उपासक का संतोष से भर गया। उसने तीसरा प्रश्न कियाह्नभंते! संघ क्या है? मौ साधक इस प्रश्न से झुंझला उठा। अब उसके पास कुछ नहीं था। उसने आ बंद कर लीं। उपासक को उत्तर मिल गया। उसने चौथा प्रश्न कियाह्नभं आशीर्वाद क्या है? मौनी साधक ने हतप्रभ होकर दोनों हाथ उपासक ओर फैला दिए। उपासक सर्वथा संतुष्ट होकर चला गया।

उपासक अपने घर की ओर चला जा रहा था। मार्ग में मौनी साध के दोनों प्रतिनिधि मिल गए। वह उपासक उन्हें नहीं जानता था। उसने उ कहाह्नअरे! देखो, मैं कितना सौभाग्यशाली हूं कि मुझे आज ऐसे साधक दर्शन हुए हैं जो बहुत पहुंचा हुआ और ज्ञानी है। मैंने उनसे पहला प्र पूछाह्नबुद्ध क्या है? उसके उत्तर में उन्होंने पहले पूर्व दिशा की ओर दे और बाद में पश्चिम की ओर। इसका तात्पर्य यह है कि वे यह कह रहे कि लोग बुद्ध को पूर्व-पश्चिम आदि दिशाओं में देखते हैं, किन्तु बुद्ध न पू में है और न पश्चिम में। वह अपने भीतर है। मेरा दूसरा प्रश्न थाह्नधर्म क है? इसके उत्तर में साधक ने ऊपर और नीचे देखकर मुझे यह बता दिया धर्म समता में है। उसमें ऊपर-नीचे में कोई अन्तर नहीं होता।

मेरा तीसरा प्रश्न थाह्नसंघ क्या है? इसके उत्तर में साधक ने आंखें कर ली और यह जताया कि जो मुनि आंखें बंद कर अपनी आत्मा गहराइयों में जाकर सुखपूर्वक गहरी नींद सो सकता है, वही साधु है। साधुओं का समुदाय ही संघ है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मेरा चौथा ओर अन्तिम प्रश्न थाह्न आशीर्वाद क्या है? इसके उत्तर में धक ने हाथ फैलाकर मुझे दिखाए। इसका तात्पर्य था कि वे यह कहना हते हैं कि विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति जो कल्याण की भावना है, ी आशीर्वाद है।

ओह! वह साधक कितना ज्ञानी और महान् है।

उपासक की बातें सुनकर दोनों व्यक्ति अपने मौनी साधक के पास ए। आते ही मौनी साधक कुपित हो बोल उठाह्न अरे नराधमो! तुम कहां गए थे? अभी-अभी मेरे पास एक गुरुतर कष्ट आ पड़ा था। ज्यों-त्यों उसे पार किया है।

१७. रत्नवणिक्

एक बार एक बनिया रत्नों की टोह में घर से निकला। चलते-चलते रत्न-द्वीप में जा पहुंचा। वहां रत्नों के ढेर पड़े थे। कोई रखवाला नहीं । उसने त्रैलोक्य सुन्दर बहुमूल्य रत्नों की गांठ बांधी। वह उसे अपने घर जाना चाहता था, किन्तु रास्ते में चोरों का भय था। उसने सोचा और उपाय ढूंढ निकाला।

उसने रत्नों की गांठ एक सुरक्षित स्थान में रख दी। फटे-पुराने कपड़े ने। पागल की तरह अभिनय करता हुआ वह उसी रास्ते से चला जहां र रहते थे। जाते-जाते हाथ में कुछ कंकड़ ले लिए। चोरों को देखते ही जोर से बोल उठाह्न 'देखो रत्नवणिक् जा रहा है।' बार-बार यह कहता ा और कंकड़ों को जोर-जोर से ऊपर उछालता हुआ वह चला जा रहा । कई चोर उसके पास आए। कंकड़ों को देख वापस चले गये। तीन दिन इसी प्रकार करता रहा। चोरों ने जान लिया कि यह पागल है।

चौथे दिन वह अपने रत्नों की गांठ ले उसी रास्ते से निकला। चोरों ने पहचाना और पागल समझ उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। प्रसन्न होता ा वह तीव्र गति से अटवी को पार कर रहा था। रास्ते में प्यास लगी। छटपटाने लगा। पानी की खोज की। पानी नहीं मिला। देखते-देखते एक ाई नजर आयी। उसमें अनेक मृग मरे पड़े थे। थोड़ा पानी पिया, उसमें न्ध आ रही थी। पानी चर्बीमय हो गया था। वह वहां गया, श्वास को

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रोक, स्वाद की ओर ध्यान न दे, उस जल को पी गया। प्यास बुझी। रत्नों को ले अपने घर सुरक्षित पहुंच गया।

१८. एक प्रश्न

एक राजा था। उसके एक ही पुत्र था। एक बार राजा ने सोचाह्न एकाकी पुत्र को रोग न हो जाए, अतः अभी इसकी चिकित्सा करा ले चाहिए।' उसने वैद्यों को बुला भेजा। तीन वैद्य आए। राजा ने उसको स बात समझाते हुए कहाह्न'मेरे राजकुमार को आप ऐसी औषधि दें कि भविष्य में किसी भी प्रकार का रोग न हो।' तीनों वैद्यों ने उसे सहर्ष स्वी किया। राजा ने पूछाह्न'तुम्हारी औषधि कैसी है?'

पहले वैद्य ने कहाह्न'मेरी औषधि का प्रभाव यह है कि यदि शरीर रोग है तो वह उसे मूल से नष्ट कर देगी और यदि कोई रोग नहीं है तो सारे शरीर को नष्ट कर देगी।'

दूसरे वैद्य ने कहाह्न'मेरी औषधि रोग का उपशमन करती है और कोई रोग न हो तो वह न कोई गुणकारक होती है और न दोषकारक।'

तीसरे वैद्य ने कहाह्न'मेरी औषधि रोग को उपशांत करती है और कोई रोग न हो तो रूप तथा लावण्य को बढ़ाती है और शक्ति का सं करती है।'

राजा ने सब सुना और तीसरे वैद्य से राजकुमार का उपचार करा धर्मनीति तीसरे वैद्य के समान, समाजनीति दूसरे वैद्य के समान और राजनी पहले वैद्य के समान है। अब जनता को यह सोचना है कि वह अपना जी किसे सौंपे।

१९. मिथ्या आग्रह

एक साधिका संबोधि प्राप्त करने का प्रयास कर रही थी। उसने बु प्रतिमा बनाकर, उस पर स्वर्ण का झोल चढ़ा दिया। जहां भी वह जाती, प्रतिमा को अपने पास रखती और पूजा-उपासना करती थी।

वर्ष बीतते गए। संबोधि प्राप्त नहीं हुई। अब वह साधिका उस प्रति को साथ ले एक छोटे-से गांव के एक मंदिर गई। वहां बुद्ध की अ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

माएं थीं। वे भिन्न-भिन्न स्थलों में प्रतिष्ठापित थीं। उसने भी अपनी मूर्ति स्थापना एक ओर कर दी। वह अपने बुद्ध की प्रतिमा के समक्ष धूप ती थी। धूप की सुगन्ध दूसरे बुद्धों के नाक में भी जाने लगी। यह उस धिका को अच्छी नहीं लगी। उसने एक नली का निर्माण किया। नली का छोर अपने स्वर्णिम बुद्ध की एक नासिका में लगा दिया और दूसरा छोर पर। अब धूप की सुगन्ध सीधे स्वर्णिम बुद्ध की नाक में पहुंचने लगी। बहुत प्रसन्न हुई। निरन्तर धूप-सेवन के कारण बुद्ध का नाक काला हो और प्रतिमा का सौन्दर्य नष्ट हो गया।

२०. दशार्णभद्र का गर्व

स्पर्धा का बीज स्वार्थ की खाद में पनपता है। उसकी अंतिम परिणति खद भी होती है और दुःखद भी। जब स्पर्धा प्रतिहिंसा को जागृत करती है वह दुःखद होती है और जब वह चैतन्य को अनुस्रोत से हटाकर स्रोत में स्थापित करती है तब सुखद। ज्ञान की स्पर्धा जब तक अहिंसा सीमा में होती है आत्मविकास की ओर प्रेरित करनेवाली आत्मशक्ति है, ं धन और अधिकारों की स्पर्धा अहं को पोषण करने वाली पाशविक क्ति है। इसमें अहिंसा का सीमा का उल्लंघन हुए बिना रहता।

स्पर्धा जब अपनी रेखाओं से आगे बढ़ती है तब प्रतिशोध की ज्वाला वलित हो जाती है। प्रतिशोध की भावना सदा दुःखद ही रहती है। उसमें ी झुलस-झुलस कर ही मरता है। राजा दशार्णभद्र भगवान के दर्शन के ए उद्यत हुआ। मन मोह से भर गया। वैभव की प्रचुरता और ऐश्वर्य की पन्नता का चित्र नयनों के आगे नाच उठा। मोह का अतिरेक हुआ, नयनों मद छलक आया। स्वामित्व के प्रदर्शन की भावना जाग उठी। भगवद्दर्शन अभिलाषा इस मादकता में धुंधला गई। समस्त वैभव को ले शहर की य सड़क से हो भगवद्दर्शन के लिए उसने प्रस्थान किया। वैभव और पन्नता के आलोक में लोगों की आंखें झपकने लगीं। सभी ने उसकी लीनता की मूक सराहना की। लक्ष्मीपुत्र के घोष से आकाश गूंज उठा।

भगवान उच्च आसन पर बैठे हुए परमार्थ चिन्तन में लीन थे। समता साम्राज्य था। समता के अनन्य उपासक स्वयं समतामय थे। भगवान के

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सामने सभी विविधताएं एक हो रही थीं, न पार्थक्य था न भेद। जो कुछ
वह सारा साम्य ही था। राजा हो या रंक, सेठ हो या नौकर, हरिजन हो
महाजन, पशु हो या मनुष्य सभी एकाग्रात्मकता के रस में अनुप्राणित थे

दशार्णभद्र का गर्व छलांगे मार रहा था। उसने सोचाह्नभगवान् उ
ठाट-बाट को देखकर प्रशंसा करेंगे। तब समस्त परिषद् में उसकी ऋ
सिद्धि की चर्चा होगी। वह सबकी आंखों का तारा बन जाएगा। बस यही
सम्पत्ति के एकत्रीकरण का परिणाम है। भला इससे ज्यादा मनुष्य
अचेतन पदार्थ से क्या आशा कर सकता है। गर्व का पारा बढ़ा। वह मद
हो गया। इन्द्र ने यह देखा, स्पर्धा के भाव जागे। देवता भी इस दुर्गुण
मुक्त नहीं है। उसने अपनी तैयारी की। दलबल सहित वह भगवद् परिषद
आया। आकाश में अपनी वैभव शालीनता को कई इकाइयों में संजोकर
खड़ा रहा। दशार्णभद्र ने देखा। उसका जी मचलने लगा। आंखों को म
कर उसने देखा, उसे लगा कि इन्द्र के वैभव के आगे उसकी सम्पन्नता तु
है। उसमें मेरू-राई-सा भेद है। विचार-सरणि आगे बढ़ी। चिन्तन
अजस्र-प्रवाह ने मनन का द्वार खोला। मनन की अप्रतिहत गति
निदिध्यासन को सचेत किया। उसका गर्व पिघल गया। वैभव में गड़ी दृ
वहां के कृत्रिम सतह को चीर कर अन्दर बैठ गई। आत्म-वैभव के आलो
में वह जगमगा उठी। उसने मोह के पाश को तृणवत् तोड़ दिया और देख
देखते वह स्वाधीन भोगों को छोड़कर मुनि बन गया।

वैभव को त्यागने वाला महान् होता है, या वैभव को शतगुणित क
वालाह्नइस जिज्ञासा ने इन्द्र के हृदय के बांध को तोड़ दिया।
द्युलोकवासी धरती पर उतर आया। लोगों ने देखाह्नइन्द्र का मस्तक मुनि
चरणों में झुक रहा है।

स्पर्धा की यह कहानी अति प्राचीन है, परन्तु उसकी याद आज
नवीन पीढ़ी की भावनाओं को प्रतिध्वनित करती है। क्या ही अच्छा हो,
कथा का अन्त भी जीवन-व्यापी हो सके।

२१. विश्वास किसका?

प्रतिशोध की चर्चा वे करते हैं, जो पाशविक शक्ति से युक्त हो। क्ष
की उपासना वे करते हैं, जो आत्मशक्ति के धनी हों।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बात बहुत पुरानी नहीं है। उन दिनों में बीकानेर में राजा रायसिंहजी य कर रहे थे। वे समता के प्रतीक थे। सौजन्य की प्रतिमूर्ति थे। सारे य की प्रजा सुखी थी। उनके कृपापात्र दीवान कर्मचन्द बच्छावत का उन्हें योग था। राजा एक शक्ति है और दीवान उस शक्ति को दिशा देने ली युक्ति है।

कई दिन बीते। राजा का दीवान के प्रति अविश्वास पैदा हो गया। ी बुद्धिमान् था। अविश्वासी बनकर कार्य करना खतरे से खाली नहीं है। सोच वह दिल्ली चला गया। उसने अपने समस्त कुटुम्ब को लेकर ल्ली में निवास कर लिया। बुद्धि के धनी की सर्वत्र पूजा होती हैह्नअकबर उन्हें अपने राज्य में एक ऊंचे ओहदे पर रख लिया था।

कई दिन बीते। कर्मचन्दजी रोगाक्रान्त हुए। सारा शरीर जीर्ण हो गया। वयवों की क्षीणता से मृत्यु की सन्निकटता परिलक्षित होने लगी। परन्तु द्धि का वैभव आज भी अटूट था।

स्मृति की तत्परता, चिन्तन की प्रौढ़ता और तात्कालिक निर्णायकता वे आज भी अखूट भंडार थे। बीकानेर के राजा रायसिंहजी ने कर्मचन्द के ावस्था के समाचार सुने। पुराना प्रेम जागृत हो उठा। मिलने की उत्कण्ठा वे दिल्ली गये। अपने यशस्वी दीवान को मरणासन्न अवस्था में देखा। वारों की उथल-पुथल ने हृदय को आर्द्र बना दिया। आंखें छलक आई। -टप कर आंसू गिर पड़े। इतना होने पर भी कर्मचन्दजी मौन थे। राजा सिंहजी चले गये। कर्मचन्दजी के पुत्रों ने कहाह्नपिताजी! अपने पुराने राजा तने दयार्द्र हैं। आपकी इस अवस्था को देखकर वे रो पड़े। उनका हमारे कितना प्रेम हैं, आप उन्हें अपना मित्र क्यों नहीं समझते?

निपुण मंत्री ने कहाह्नपुत्र! मनुष्य अथाह होता है। उसका थाह पा लेना ज नहीं है। मनुष्य जो कुछ दीखता है वह उतना ही नहीं है, वह उसके तिरक्ति भी है। राजा के आंसू, दया के आंसू नहीं थे। उनकी कदुष्णता में शोध की गंध थी। वे इसलिए रोए कि उन्हें यह धोखा रह गया कि मैं ने शत्रु को अपने हाथों से नहीं मार सका, आज वह सुख से मर रहा है। लिए पुत्रो! याद रखना, कभी उनका विश्वास मत करना।

कुछ दिन बीते। कर्मचन्द की सुख से मृत्यु हो गई। पुत्रों ने अंतिम

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बात भुला दी। रह-रह कर उन्हें राजा रायसिंहजी के आंसू याद आने ल

दिल्ली को छोड़ वे सारे पुनः बीकानेर लौट आए। राजा रायसिंहजी उन्हें पुनः मंत्री पद के लिए आह्वान किया। प्रेम जाग उठा। कर्मचन्द के को मंत्री पद मिल गया। बच्छावत परिवार फूल उठा। राजा रायसिंहजी मौका पा मंत्री पर झूठा आरोप लगाकर सारे बच्छावत परिवार को मौत घाट उतार दिया। दीवान कर्मचन्दजी की बात अक्षरशः सत्य निकली।

२२. प्रतिशोध की ज्वाला

प्रतिशोध की भावना हिंसा से अनुप्राणित होती है। उसमें हिताहित विवेक नहीं होता, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की बुद्धि नहीं होती, कृतज्ञता का भ नहीं होता। उसमें होती है विवेक-विकलता, कृतघ्नता और बदला लेने उत्कृष्टता।

मुहम्मद गजनवी सोमनाथ के वैभवशाली मन्दिर की ओर चल पड़ हीरे और पन्ने के आलोक में उसने अपने चमचमाते भाग्य को देखा। मं को तोड़ता हुआ वह मूल प्रतिमा के सामने जा खड़ा हुआ। वह मूर्ति ही पन्ने से अलंकृत थी। एक पुजारी उसको बांह में लपेटे, वहीं पर खड़ा थ उसने गिड़गिड़ाते हुए कहाह्नआप समूचा वैभव ले जाइये, पर इस मूर्ति मत तोड़िये। मैं हीरे-पन्नों से आपके ऊंट लदवा देता हूं। आप मूर्ति को तोड़ें।

गजनवी ने कहाह्नमैं नहीं चाहता कि आनेवाला इतिहास 'बुत्तफरो (मूर्ति बेचनेवाला) के नाम से मेरा उल्लेख करे। मैं चाहता हूं कि 'बुत्तशिकन' (मूर्तिभंजक) के नाम से प्रसिद्ध होऊं। इतना कह उसने न तलवार से पुजारी के टुकड़े कर दिये और उस विशाल मूर्ति के तीन टु कर सारा वैभव ऊंटों पर लदवाकर चलता बना।

पुजारी के कुटुम्बियों में प्रतिशोध की भावना जाग उठी। उन्होंने उप ढूंढ़ निकाला। उसे मार्गदर्शकों की आवश्यकता थी। कई ब्राह्मण उस मार्गदर्शक बने। प्रतिशोध की अन्तर ज्वाला विस्तृत हो चली। मार्गदर्शकों मुहम्मद गजनवी को कच्छ के रण में भटका दिया। पानी-पानी करते हज

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ाही मर गए। गजनवी ने चालाकी जान ली। उसने सभी मार्गदर्शकों को वा दिया।

यह प्रतिशोध की कहानी है। इसकी आग एक बार प्रज्ज्वलित हो जाने जन्म-जन्मान्तर तक नहीं बुझती। यह वैर का अनुबंध है। प्रतिशोध से ा और हिंसा से पुनः प्रतिशोधह्नयह चक्र चलता रहता है।

२३. आर्य कालक

पुराने जमाने की बात है, उज्जयिनी नगरी में 'आर्यकालक' नामक चार्य रहते थे। वे सूत्रों के विद्वान् थे। उनकी शिष्य-सम्पदा बहुत थी। क बार आचार्य ने सोचाह्न'मेरे शिष्य अविनीत हैं, मेरा आदेश नहीं सुनते। नः मुझे ऐसे स्थान पर चले जाना चाहिए जहां मेरे आदेश का सहजतया लन हो सके तथा इन शिष्यों की बुद्धि भी ठिकाने आ जाए।' ऐसा विचार आचार्य ने शय्यातर को अपनी भावना बताई और कहाह्न'यदि शिष्य मेरे में कुछ पूछें तो तुम्हें मौन ही रहना होगा और यदि वे तुम पर ज्यादा ाव डालें तो भी तुम्हें पिघलना नहीं होगा।'

आर्यकालक के प्रशिष्य 'सागर' सुवर्णभूमि में विहार कर रहे थे। वे भी गम के धुरंधर विद्वान् थे।

रात्रि का समय था। सारे शिष्य सो रहे थे। आर्यकालक उठे और ले ही सुवर्णभूमि की ओर चल दिए। वहां सागराचार्य के गच्छ में एक की हैसियत से शामिल हो गये। सागराचार्य ने उन्हें नहीं पहचाना। अतः युत्थानादि कोई आदर-सत्कार नहीं किया। आर्यकालक एक सामान्य ु की तरह वहां रहने लगे।

इधर प्रातःकाल होते ही आचार्य आर्यकालक के गायब होने की बात शहर में फैल गई। शिष्यों ने आचार्य को इधर-उधर ढूंढा, परन्तु कोई नहीं चला। वे आकुल-व्याकुल हो गये। उन्होंने शय्यातर से पूछा। यातर ने कहाह्नमैं क्या जानूं? जब आपको ही आचार्य ने अपनी बात नहीं ई तो भला वे मुझे क्यों बताते? शिष्य नहीं माने। उन्होंने बहुत ग्रहपूर्वक बार-बार पूछा। शय्यातर ने सारी बात उन्हें बता दी।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उसी समय सारे शिष्य सुवर्णभूमि की ओर चल दिए। रास्ते में ल
पूछतेह्न'ये कौन आचार्य जा रहे हैं?' शिष्य उत्तर देतेह्न'आचार्य आर्यकाल
जा रहे हैं।' लोग दौड़-दौड़ सागराचार्य के पास गये और उ
कहाह्न'महाराज! बहुश्रुत आचार्य आर्यकालक अपने शिष्यों सहित इस
आ रहे हैं।' सागराचार्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने शिष्यों से कहाह्न'अ
मेरे आचार्यजी आ रहे हैं, मैं उनसे कई तत्त्वों की जानकारी करूंगा।' इतने
ही आर्यकालक के शिष्य वहां आ पहुंचे। उन्होंने पूछाह्न'क्या आच
आर्यकालक यहीं ठहरे हुए हैं?' सागराचार्य के शिष्यों ने कहाह्न'नहीं,
आचार्य महाराज नहीं आये। हां, एक साधु यहां आये थे और वे हमारे स
ही ठहरे हुए हैं।' साधु को देखते ही उन्होंने पहचान लिया कि ये ही आच
हैं। सारे शिष्य उनके चरणें में गिर पड़े। उनका अनुनय-विनय किया।

सागराचार्य ने यह बात सुनी। वे बहुत लज्जित हुए। उन
सोचाह्न'मैंने कितनी मूर्खता की। मैंने इनके साथ अनुचित व्यवहार किय
इनसे वंदना करवाई। ये तो मेरे दादा-गुरु हैं। मैंने इनकी आशातना की है
अपराह्न में आशातना के दण्डस्वरूप 'मिच्छामि दुक्कडं' लिया। तत्पश्च
सागराचार्य ने आचार्य आर्यकालक से पूछाह्न'क्षमाश्रमण! कृपाकर आप बत
मेरी वागरणा कैसी है?' उन्होंने कहाह्न'बहुत सुन्दर! किन्तु गर्व नहीं क
चाहिए। जिस प्रकार हाथ से फेंकी हुई धूल इधर-उधर बिखर जाती है, व
अधिक और कहीं थोड़े रूप में एकत्रित हो जाती है, उसी प्रकार तीर्थं
अपने गणधरों को और गणधर आचार्य, उपाध्यायों को सूत्र की अर्थ
वागरणा देते हैं, कौन कितना ग्रहण कर पाता है, यह हम नहीं जान सक
इसलिए ज्ञान का गर्व नहीं करना चाहिए।' सागराचार्य ने अपनी भूल स्वीक
की। आचार्य आर्यकालक का बहुमान किया। सारे शिष्य और प्रशिष्य उन
अनुयोग सुनने लगे।

२४. शिरच्छेद

जो दूसरों के लिए मर मिटता है उसकी अर्चना और पूजा होती
युगों से वैसे व्यक्ति की पूजा होती रही है, आज भी होती है और भविष्य
भी होती रहेगी। सतियों और शूरवीर व्यक्तियों में अपने शीश-समर्पण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ा भावना होती है और इसलिए वे अर्चित और पूजित होते हैं।

कच्छ-बागड़ में कटारिया गांव था। आज वह 'कयाजी का कटारिया' नाम से जाना जाता है। उत्तर के पश्चिम दिशा में एक किलोमीटर की दूरी देवलबाई का स्थान है। आज भी कच्छवासी इसके शीश-समर्पण की ना को उत्साह के साथ बताते हैं। विक्रम की उन्नीसवीं सदी। चार दशक न चुके थे। कटारिया ग्राम से तीन गाऊ की दूरी पर रायधरी नाम का गांव वहीं देवलबाई का जन्म हुआ। बाल्यकाल से ही इनकी तेजस्विता ोखी थी। अन्यान्य बालकों से वे विशिष्ट थी। बाल्यकाल बीता। विवाह य अवस्था आने पर इनका विवाह खोडासर गांव में किया गया। लबाई के एक पुत्र हुआ और उनका नाम रखा गया 'वासो'। जब वह लक पांच वर्ष का हुआ, कटारिया गांव में एक अभूतपूर्व घटना घटी।

कटारिया गांव में जेराज नाम का एक बनिया रहता था। वह लेन-देन धंधा करता था। उस समय बागड़ में बनियों का बोलबाला था। वे पार में माहिर थे, तो शरीर में भी किसी से कम नहीं थे। व्यापार में सी को आगे नहीं आने देते थे। इनके साथ जूझना बहुत कठिन होता था। समय अनेक बनिये अपनी शूरवीरता के लिए प्रसिद्ध थे।

कटारिया गांव का जेराज भी बहुत बलशाली था। वह आग्रही और ीला भी था। कोई भी उससे शत्रुता मोल लेना नहीं चाहता था। राजपूत ा अन्यान्य लोग भी उससे भय खाते थे।

रायधरी गांव के चारणों के साथ जेराज की लेन-देन चलती थी। का ब्याज मारवाड़ और उगाई पठानी थी। उस समय भयंकर दुष्काल ा। चारण लोग सेठ जेराज को न मूल ही दे सके और न ब्याज ही चुका क। चारणों ने जेराज के बार-बार तकाजा करने पर भी उसकी परवाह नहीं , क्योंकि वे रकम या ब्याज देने की स्थिति में नहीं थे। चारणों की इस परवाही से जेराज बौखला उठा और एक दिन वह अपनी घोड़ी पर चढ़कर धरी गांव की ओर चल पड़ा। उसने मन ही मन यह निश्चय किया था कि छ भी क्यों न हो, एक-एक की वसूली करनी ही है। वह रायधरी गांव के हर वाले राममन्दिर के आगे चारपाई बिछा कर बैठ गया। उसने उन सभी णों को बुला भेजा जिनके साथ उसका लेन-देन चलता था। वे सभी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

चारण आए। उसने तड़कते हुए सबको कहा कि वे उसकी रकम तत्काल
का प्रबन्ध करें। उसने सबको डराया-धमकाया। चारणों ने दुष्काल के का
रकम न देने की मजबूरी जाहिर की। सेठ जेराज गुस्से में आकर बो
उठाह्व'यदि अभी रकम न हो तो अपनी-अपनी औरतों को बेचकर भी र
चुका दो।'

जेराज की यह बात चारणों को चुभ गई। परन्तु वे क्या कहें? साहू
के आगे वे विवश थे। चारण बौखला गए, परन्तु उस समय मौन रहे। इ
जेराज का गुस्सा और आवेश बढ़ता ही जा रहा था। उसे सीमातिक्र
जानकर एक वृद्ध चारण ने कहाह्वसेठजी! आपको चारणों की शर्म तो नहीं
परन्तु आप भगवान की शर्म तो रखें।

'तुम क्या कहना चाहते हो?' जेराज ने पूछा।

'सेठ! मैं कहना चाहता हूं कि आज तक इस राम-मन्दिर के सम
कोई भी व्यक्ति खाट बिछाकर नहीं बैठा है। आज आपने खाट पर बैठ
भगवान का अपराध किया है। उस पर विचार तो करो। आपकी यह बेश
तो हमारे से देखी नहीं जाती।

'तो तुम जो चाहो वह कर लेना', जेराज ने गुस्से में कहा।

वृद्ध चारण बोलाह्व'चारण और कर ही क्या सकते हैं। वे अधिक
अधिक 'त्रांगा' (धीज) कर सकते हैं।'

सेठ बोलाह्व'चारण 'त्रांगा' करेंगे तो वह बनिया उस पर मूतेगा,
बात मत भूल जाना।'

अब चारण आवेश में आ गए। आपस में बोलचाल होने लग
हाथापाई भी हुई। चारणों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। सेठ अवसर
पहचान कर तत्काल खाट से उठ गया, और घोड़ी पर चढ़कर बोलाह्व'
सब इस प्रकार लड़ने पर उतारू हो गए हो तो मैं भी सबको देख लूंगा
तुम यहां कितने दिन तक सही सलामत रह सकते हो।'

चारण समझ गए कि हमने सांप की पूंछ पर पैर रखा है। अब न ज
यह सांप क्या कर बैठेगा? अब सेठ जेराज रायधरी गांव को नष्ट-भ्रष्ट कि
बिना नहीं रहेगा। अब हम क्या करें? सभी सोच में पड़ गए।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सभी चारण एकत्रित हुए। विचार-विमर्श हुआ। अन्त में सभी ने यही ाह्नअब हमें अपना अमोघ शस्त्र काम में लेना चाहिए। वह शस्त्र है त्रांगा ोज)। रायधरी गांव में अस्सी वर्ष की एक बुढ़िया थी। सारा गांव उसे ई' कहकर पुकारता था। वह अकेली थी। चरखा चलाकर अपने जीवन गुजारा करती थी। उसका सिर सफेद और मुंह झुर्रियों से भरा हुआ था। छ चारण उसके पास आए और बोलेह्न'आई मां! आज तो तुम्हारी वश्यकता है।' अरे! मेरी आवश्यकता। कुछ हड्डियों के अतिरिक्त मेरे पास ही क्या? मां! इसी की आवश्यकता है। उस कटारिया गांव वाले जेराज चारणों की त्रांगा पर व्यंग्य कसा है। हम उसे बता देना चाहते हैं कि रणों का त्रांगा क्या होता है?

'अच्छा तो यह बात है, तो बताओ मैं क्या दे सकती हूं?'

'हमें तुम्हारा सिर चाहिए।'

'अरे, तो अभी ले लो। अभी काट दो इसे। चारणों को सिर का मोह ं होता।'

आई मां ने अपने सफेद बालों (केशों) वाला सिर चारणों के आगे कर या।

'मां! अभी नहीं। हम प्रातः आएंगे। तुम तैयार रहना।'

'अरे! मैं तो तैयार ही हूं। तुम मांगों, बस उतनी देरी है। सभी चारणों यह निश्चय कर लिया की कल प्रातः इस आई मां का सिर काटकर सेठ ाज को दे देना है। दूसरे दिन चारणों के समूह के समूह रायधरी गांव से हर देवलमाता की दादी जसोहा माई के मन्दिर के पास एकत्रित होने लगे। र के फूलों की माला गले में पहन कर बूढ़ी आई मां भी लकड़ी के सहारे र-धीरे चलकर मन्दिर के पास गई। मस्तक समर्पण की पूर्वविधि पूरी होने आई मां ने अपना मस्तक झुकाया। एक चारण युवक हाथ में नंगी वार लेकर खड़ा हो गया। उस युवक ने आई मां के गले पर तलवार का करने के लिए हाथ ऊपर उठाया। इतने में ही दूर से कोई चारणी देवी ड़ती हुई आती दिखाई दी। चारण युवक का हाथ रुक गया। कुछ ही क्षणों यह पता लगा कि खोडासर गांव से देवल माता दौड़ती हुई आ रही है।

रायधरी में होने वाला त्रांगा की बात सुनकर देवल माता का खून

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

खौल उठा। उसने सोचा, मेरे जीवित रहते हुए एक वृद्ध नारी का शिर क
जाए, यह किसी भी दृष्टि से उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। त्रांगा की था
में तो ताजा शिर रखना। इसी विचार से देवल माता ने अपना शिरच
कराने का निश्चय कर डाला। वह अपने पांच वर्ष के पुत्र वासो को अ
पति को संभला कर प्रातःकाल खोडासर से यहां आ पहुंची। उसे देखकर
चारण बोलाह्न'देवल! तुम आ गई। अच्छा हुआ। अब तुम इस आई मां
शिर ठीक पकड़कर रखो, जिससे कि एक झटके में उसे झट से अलग वि
जा सके।'

देवल बोलीह्न'दादा! आई मां के इस सूखे शिर का क्या करोगे।'

'बेटी! यह तो राक्षस जेराज को भेंट दिया जाएगा। चलो, अब
देरी मत करो।'

'किन्तु इस बुढ़िया के सफेद और झुर्रियों वाले शिर के बदले मैं
हराभरा सिर दूं तो? देवल की आंखों से बिजली की किरण फूट पड़ी।'

'अरे, तुम तो देवल हो, रायधरी की बेटी! तुम्हारा शिर लें तो हम
दिवाला ही निकल जाए' चारणों ने बाधा उपस्थित की।

किन्तु दादा! कटारिया वाले उस काले नाग के द्वार पर तो रक्त
तिलक मैं लगाऊंगी। इस बुढ़िया से यह काम नहीं होगा। रायधरी की
का शिर तो विशेष शक्तिशाली होगा।

इतने कहते-कहते देवल का रंग-ढंग बदल गया। उसकी पूरा श
कांप उठा। वह चंडी जैसी लगने लगी। सारा चारण मंडल यह दृश्य देख
विस्मित हो गया। बेटी की बात के समक्ष दादा फीका पड़ गया। आ
आगे देवल और उसके पीछे सभी चारण चल रहे थे। वे सभी कटारिया
ओर प्रस्थित हो गए। सती के सत् चढ़ा हो, इस प्रकार देवल तीर की
की भांति सबसे आगे दौड़ती हुई जा रही थी।

कटारिया गांव के परिसर में आकर सती माता देवल खड़ी रही। उ
अपने साथ आने वाले एक चारण वीर को कहाह्नअब अपनी तलवार का
कर मेरा शिरच्छेद करो। देवल माता मस्तक थमाकर खड़ी हो गई।

'हर-हर महादेव' और जय माताजी के गगनभेदी नारों के साथ चा
युवक की तलवार देवल मां के गले पर पड़ी। तलवार के एक ही झटके

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ल माता का शिर धड़ से अलग हो गया। पास में खड़े एक चारण युवक देवल के शिर को धरती पर पड़ने से पहले ही एक थाल में उठा लिया। व देवल का धड़ जुझारू बन गया। चारण मंडली आगे बढ़ी। उसके साथ ल का धड़ भी चलने लगा।

इस अद्भुत दृश्य को देखकर कटारिया गांव के लोग स्तब्ध रह गए। छ लोग सेठ जेराज को खबर देने दौड़े। पूरे गांव में हाहाकार मच गया। ाचार सुनकर सेठ जेराज घबरा गया। देवल माता के 'त्रांगे' का ताप वह नहीं सका। वह ऊपर खड़ा था। वहां से अचानक गिर पड़ा, सिर फूट और उसी क्षण उसकी मृत्यु हो गई।

जेराज का भाई हीरजी मुंह में तिनका लेकर चारण मण्डली की शरण में या और क्षमा मांगने लगा। चारणों ने उसे क्षमा कर दिया।

२५. गुणग्राहिता

वासुदेव कृष्ण द्वारका नगरी में राज्य करते थे। उनके पास तीन भियां थीह्नकौमुदिकी, संग्रामिकी और दुर्भूतिका। कृष्ण प्रारम्भ से ही ग्राही थे।

एक बार इन्द्र ने देवताओं की सभा में कहाह्न'कृष्ण सर्वगुणग्राही है। ों से भी वे गुण निकाल लेते हैं और वे कभी नीच के साथ युद्ध नहीं ते। एक देवता को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसके मन में द्वेष उमड़ या। उसने कहाह्न'यह बात झूठी है। मैं उसे (कृष्ण को) दोषग्राही ाऊंगा और नीच के साथ युद्ध कराकर दिखाऊंगा।

उन दिनों भगवान नेमिनाथ द्वारका में विराज रहे थे। कृष्ण अपने वार वालों को साथ ले भगवान के दर्शन करने जा रहे थे। वह देव भी ां आ पहुंचा और उसी मार्ग में एक मृत कुत्ते का रूप बना एक ओर लेट । उसके शरीर से दुर्गन्ध निकल रही थी। आसपास का सारा वातावरण हो रहा था। किन्तु उस मृतक कुत्ते के दांत बहुत मनोहर और चमकीले

कृष्ण उसी रास्ते से जा रहे थे। आगे आगे सैनिक चल रहे थे। उन्हें ों की दुर्गंध आ रही थी। वे अपना मुंह ढककर दूसरी ओर चले गये।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पीछे से कृष्णजी आये। उन्होंने इसका कारण पूछा। कारण मालूम होने पर
वे उसी मार्ग से चले और कुत्ते के शव के पास आ पहुंचे। उन्होंने अपना
नहीं मोड़ा। उन्होंने कहाह्न'अहो! कुत्ते के दांत कितने सुंदर है! ये स्फटिक
उज्ज्वल दांत कितने शोभित हो रहे है!' इतने दुर्गन्धमय वातावरण में
कृष्ण ने गुणों की प्रशंसा की। देवता यह सुन अवाक् रह गया। उ
सोचाह्नकृष्ण को दोषग्राही बनाना सहज नहीं है। कृष्णजी आगे बढ़ गये।

भगवान नेमिनाथ को वंदना कर कृष्ण वापस आ रहे थे। मार्ग में
अनुचर ने कहाह्न'स्वामिन्! आपके अश्वरत्न को कोई चुराकर ले गया है
यह सुनते ही शम्ब आदि कुमार उसकी खोज में निकल पड़े। दोनों ओर
युद्ध छिड़ गया। शम्ब आदि सारे कुमार युद्ध में हार गये। वे रणक्षेत्र
छोड़ भाग गये। तब स्वयं कृष्णजी वहां युद्ध करने उपस्थित हुए। उन
अपने अश्वरत्न को चुराकर ले जाने वाले चोर को देख लिया। उसे ललक
हुए पूछाह्न'तुम अश्व को चुराकर क्यों ले जा रहे हो।' विद्याधर रूपध
देवता ने कहाह्न'यह मेरी इच्छा है। यदि तुम्हें अपना घोड़ा चाहिए तो
साथ युद्ध करके उसे ले सकोगे, अन्यथा नहीं।' कृष्ण ने कहाह्न'युद्ध अव
किया जा सकेगा। तुम किस जाति के हो?' उसने कहाह्न'मैं चाण्डाल हूं

कृष्ण ने कहाह्न'मैं नीच जाति के व्यक्तियों के साथ युद्ध नहीं क
चाहता। तुम अश्व ले जाओ। मैं तुमसे हारा, यही समझ लो।'

परीक्षा हो चुकी थी। देवता ने अपना मूल रूप प्रकट किया और कृ
से कहाह्न'आप वास्तव में महान् है। इन्द्र ने जो प्रशंसा की थी वह यथ
है। आप मुझसे कुछ वरदान मांगे।' वासुदेव कृष्ण ने कहाह्न'आप
'अशिवोपशमनी' नाम की भेरी दीजिए।' (जहां यह भेरी बजाई जाती है
जहां जहां उसका शब्द सुनाई देता है वहां छह मास तक कोई नया
उत्पन्न नहीं होता और प्रचलित रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।)

देवता ने 'अशिवोपशमनी' भेरी कृष्ण को दे दी। वह भेरी छठे म
बजाई जाती। जहां कहीं इसका शब्द सुनाई देता, पुराने रोग नष्ट हो
और नवीन रोग छह महीने तक उत्पन्न नहीं होते। प्रति छह मास यही
जारी रहता।

एक बार एक धनवान सेठ द्वारका में आया। वह मस्तक की वेदना

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

त पीड़ित था। उसने वैद्यों से उसका इलाज पूछा। वैद्यों ने कहा कि यदि
ीर्षचंदन का सिर पर लेप किया जाए तो शीघ्र ही आराम हो सकता है।
ने चंदन की तलाश की। किन्तु वह कहीं भी नहीं मिला। अंत में उसे
लगा कि 'अशिवोपशमनी' भेरी गोशीर्षचंदन की बनी हुई है। वह अपनी
ना से घबरा उठा। ज्यों-त्यों वह उस व्यक्ति के पास पहुंचा जिसके
क्षण में यह भेरी थी। उसे कुछ लालच दिखाया। किन्तु वह नहीं माना।
खिर वह विशेष लालच के आगे झुक गया। भेरी तोड़ एक टुकड़ा सेठ को
दिया। भेरी खंडित हो गई। वासुदेव कृष्ण को इस बात की खबर नहीं
ी।

छह मास पूरे हुए। भेरी बजाने का काल नजदीक आया। भेरी खण्डित
चुकी थी। इससे पहले की-सी आवाज नहीं निकली। लोगों के रोग बढ़ने
। कृष्ण के कानों तक यह बात पहुंची। उन्होंने भेरी की जांच करवाई।
टूट चुकी थी। कृष्ण ने संरक्षक को बहुत उपालम्भ देकर हटा दिया।

वासुदेव कृष्ण ने तेले की तपस्या कर देव की आराधना की। देव
ट हुआ। उससे दूसरी भेरी मांगी। देवता ने भेरी दी। कृष्ण ने दूसरा
पाल नियुक्त किया।

२६. परीक्षा

किसी गांव में एक ब्राह्मणी रहती थी। उसके तीन लड़कियां थीं। वह
चाहती थी कि उसकी तीनों लड़कियां जीवनभर सुख से रह सकें।
लिए बहुत देखभाल करने के पश्चात् तीनों का विवाह किसी अच्छे घराने
कर दिया। लड़कियों को ससुराल जाते समय शिक्षा देते हुए ब्राह्मणी ने
ाह्मण'देखो! पहले दिन ही अपने पति को लात से मारना।'

लड़कियां अपनी-अपनी ससुराल चली गईं। पहली लड़की ने अपने
के लात मारी। वह उसके पैरों को दबाते हुए कहने लगाब्राह्मण'तुम्हारे पैरों में
ट तो नहीं लगी?' लड़की ने अपनी मां से सारी बात कह दी। ब्राह्मणी ने
ाह्मण'बेटी! कोई चिन्ता मत कर। तेरा पति तेरा दास होकर रहेगा।' दूसरी
ड़की ने भी अपने पति को लात मारी। उसे कुछ साधारण क्रोध आया,
न्तु थोड़े समय बाद ही वह स्वतः शान्त हो गया। लड़की ने जब ब्राह्मणी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

से यह बात बताई तब उसने कहाह्न'बेटी! तू भी निश्चिन्त रह। तेरा पति
दास होकर रहेगा, किन्तु उसको ज्यादा अप्रसन्न मत करना।' तीसरी लड़
ने भी अपने पति को लात मारी। वह रुष्ट हुआ और उसको खूब पीटा
वहां से चला गया। लड़की अपनी मां के पास आयी। मां ने कहाह्न'बे
तुझे उत्तम वर मिला है। तू होशियारी से रहना और देवता मानकर उस
पूजा करना। स्त्रियों के लिए पति ही देवता है। स्त्रियां पति-परायण हों
हैं।' लड़की अपने पति के पास गई और ज्यों-त्यों उसे प्रसन्न करके क
लगीह्न'पतिदेव! यह तो परम्परा की बात है। कोई भी दुर्भावना
कौतुकवश मैंने वैसा नहीं किया।' पति प्रसन्न हो गया।

२७. विनिमय

भगवान् महावीर राजगृह में समवसृत थे। एक विद्याधर भगवान्
वन्दन कर विद्या साधने के लिए चला। विद्या-साधना के मूलमंत्र के
अक्षरों को वह भूल गया था। अतः हीनाक्षर-दोष के कारण वह वि
साधते समय कभी ऊपर को उछलता और कभी नीचे गिर पड़ता।

अभयकुमार को यह देखकर आश्चर्य हुआ। वह उसके पास आया
सारी बात पूछी। विद्याधर ने अपनी बात सही-सही उसे बता
अभयकुमार ने कहाह्न'यदि तुम मुझे अपनी विद्या सिखा दोगे तो मैं तुम
कार्य को सरल बना दूंगा और तुम सरलता से विद्या को साध सकोगे
विद्याधर ने बात मान ली।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने कहाह्न'मंत्र का जो पद तुम्हें याद हो वह
सुनाओ।' विद्याधर ने मंत्र पढ़कर ज्यों का त्यों उसे सुना दिया। अभयकु
में एक विलक्षणता थी। एक पद को सुनकर वह पदानुसारी लब्धि से विस
अक्षरों को भी जान लेता था। मंत्रपद को सुनकर अभयकुमार ने विस
अक्षर बता दिए। मंत्र-पद पूरा हुआ। थोड़ी देर में ही विद्याधर ने विद्या स
ली। अपने शर्त के अनुसार उसने अभयकुमार को विद्या सिखाई और
अपने गन्तव्य स्थान पर लौट गया।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२८. चालाकी

बहुत पुरानी बात है। अयोध्या में सार्थवाह नाम का एक धनकुबेर ता था। उसके पुत्र का नाम 'मनक' था। उसने अनेक कलाएं सीखीं। र्य-कला में भी वह निपुण हुआ। परन्तु उसे अपनी इस कला पर विश्वास ं हो रहा था। अतः उसने इसका क्रियात्मक अनुभव करना चाहा।

सायंकाल का समय था। मनक विचारों की उधेड़बुन में इधर-उधर घूम था। रात्रि का अन्धकार धीरे-धीरे बढ़ने लगा। कृष्णपक्ष था। टिमटिमाते ों का झिलमिल प्रकाश धरती के अंचल को छूने का प्रयास कर रहा था। मार्ग जनशून्य हो रहे थे। उसने देखा, उसका परममित्र अंगद हाथ में बियों का गुच्छा लिए आ रहा है। उसने उसे बुलाया और घर के अन्दर ले । कमरे के एक ओर बिछी गद्दी पर दोनों बैठ गए और गपशप करने । मनक ने बात-ही-बात में चाबी का गुच्छा ले अपने हाथों से उसे ाते-घुमाते ऊपर उछाला। वह एक लकड़ी के तख्ते पर जा गिरा, जिस कुछ मुलायम-सी चीज लगी हुई थी। तत्काल उसने वहां से उसे उठा या और अपने मित्र को दे उसे पहुंचाने गृहाङ्गण से बाहर तक चला या।

उस तख्ते पर मोम लगा हुआ था। उस पर चाबी का निशान स्पष्ट ख रहा था। उसके आधार पर उसने एक चाबी बनवाई और अपनी चौर्य-ा की परीक्षा की बाट देखने लगा।

कुछ दिन बीते। अमावस्या की अंधेरी रात में वह घर से निकला। जार सारा बन्द हो चुका था। वह एक बन्द दूकान पर गया। वह दूकान के परम मित्र अंगद की थी। अपने पासवाली चाबी से ताला खोला और वाजों को खुला रखकर बिछी हुई गद्दी पर बैठ गया। पास में तेल का क जल रहा था। सामने बहीखाते बिखेर दिए और वह कुछ कार्य में ा-सा दीख रहा था। कुछ देर बाद वह उठा। तिजोरी खोली और उसमें तीन बहुमूल्य रत्न ले घर जाने की तैयारी करने लगा। इतने में पहरेदार वधान-सावधान' का घोष करता हुआ उधर आ निकला। पहरेदार को कर वह कुछ सकपकाया। यह स्वाभाविक था, क्योंकि चोरी करने का का यह पहला अवसर था। परन्तु पुनः 'सावधान हो' सुन वह खांसा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पहरेदार ने देखाह्नदूकान खुली है, दीया जल रहा है। उसने सोचाह्नमुनीम
सेठ का लड़का कार्य कर रहा होगा। वह आगे सरक गया। पहरेदार के
ही मनक उठा और दूकान को बन्द करके घर चला गया। दूसरे दिन
शहर में यह बात फैल गई कि अमुक सेठ की दूकान में चोरी हो
बहुमूल्य रत्नों के चोरी हो जाने से सेठ को गहरी चोट लगी। कोतवाल
यह बात पहुंची। राजा ने भी सुना। उसे अपनी राज्य-व्यवस्था पर गर्व
उसने कोतवाल को बुलाकर डांटा। कोतवाल ने पहरेदार से पूछा। पहरेदा
कहाह्न'कल रात्रि के बारह बजे तक मुनीम जी इस दूकान में काम कर रहे
मैंने प्रत्यक्ष देखा है।' सेठ ने कहाह्न'यह कैसे संभव है? राज्य सरकार का
नियम है कि रात्रि के आठ बजे के बाद काम नहीं किया जाता।' पहरेदा
कहाह्न'कुछ भी हो, कल रात्रि में बारह बजे तक दूकान खुली थी। मैं
को अवश्य पकड़ लूंगा।'

नगर-रक्षक चारों ओर दौड़-धूप करने लगे। अपने पड़ोसी सेठ के
मनक पर किसी का सन्देह नहीं था। सन्देह हो भी तो कैसे! वह स
धनकुबेर था, उसे चोरी करने की क्या आवश्यकता थी, वह निश्चिन्त

छह महीने बीत गए। पहरेदार को चैन नहीं था। वह चोर की टोह
था। एक दिन रात को घूमते-घूमते वह मनक के घर के नीचे विश्राम क
बैठा। मनक सप्तभौम हर्म्य की ऊपर की मंजिल में सोने की तैयारी कर
था, अचानक मनक को खांसी आयी। पहरेदार की स्मृति ताजी हो
उसके स्मृति-पटल पर छह महीने पहले की घटना प्रतिबिम्बित हुई। उ
आवाज पकड़ ली। सोचाह्नहो न हो चोर यही है। यह वही आवाज है
मैंने पहले सुना था।

सूर्योदय हुआ। बाजार खुला। उसने अन्यान्य स्रोतों से सारी जानक
हासिल की और राजा से जा निवेदन किया कि धनकुबेर सार्थवाह का
मनक चोर है। उसने रत्न चुराए हैं। राजा विश्वास और अविश्वास के झूले
झूलता रहाह्नधनकुबेर का पुत्र चोर! नगर-सेठ का पुत्र चोर! नहीं, नहीं।
झूठ कह रहा है। राजा ने पहरेदार को डांटा और उसे सोचकर बोलने के
कहा। 'महाराज, कुछ भी हो, चोर वही है। मुझे अपने ज्ञान पर पूर्ण आ
हैह्नविश्वास है। आप मानें या न मानेंह्नचोर वही है।' पहरेदार ने बलपू
कहा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

राजा ने कहाह्न'नहीं। कभी नहीं। मनक चोरी नहीं कर सकता। उसका चरण आज सारे नगर में आदर्श है। उसका व्यवहार बड़े-बूढ़ों को भी कुछ खने की प्रेरणा देता है। अपने धनकुबेर बाप का इकलौता बेटा, लक्ष्मी सके पैरों को चूमती है, वह चोरी करे, यह कैसे माना जाए? मैं तुम्हारे यन पर भी अविश्वास करूं, यह भी नहीं जंचता। हां, इतना मैं अवश्य ता हूं कि तुम यदि उसे चोर साबित नहीं कर सके तो तुम्हें फांसी पर कना होगा। फिर तुम्हें माफ नहीं किया जाएगा। तैयार हो इसके लिए?' रेदार के मुंह पर हर्ष की रेखाएं खिंच गईं। उसने कहाह्न'मुझे यह शर्त ीकार है। मुझे मरने से कोई डर नहीं।'

राजा के कर्मचारियों ने मनक को राजसभा में ला उपस्थित किया। ा को प्रणाम कर उसने वहां बुलाने का कारण पूछा। राजा ने कहाह्न'तुम चोरी का अभियोग है। क्या तुमने चोरी की है?'

मनक ने कहाह्न'महाराज! आप कैसी बातें करते हैं! मेरी सात पीढ़ियां पसे छिपी नहीं। मेरा ऐश्वर्य भी आपसे छिपा नहीं। मैं चोरी क्यों करूंगा? पको किसी ने बहकाया है।'

राजा ने कहाह्न'मनक! मैं जानता हूं तुम अभिजात कुल के हो, परन्तु पहरेदार....'

राजा बोलते-बोलते रुका। मनक ने कहाह्न'मैं स्पष्ट कहता हूं, मैंने ी नहीं की। इस पर भी यदि आपको विश्वास नहीं होता तो मैं आप जैसा ं वैसा करने के लिए तैयार हूं। परन्तु आपको ध्यान में रहे, मैं नगरसेठ का हूं, यदि अभियोग झूठा साबित हो गया तो....राजा ने बीच में ही ाह्न'पहरेदार को फांसी पर लटकना पड़ेगा।' राजा को पुनः अविश्वास ने घेरा। उसने मन-ही-मन में सोचाह्नमनक सच कह रहा है। पहरेदार झूठा यदि अभियोग साबित नहीं हुआ तो मेरे सम्मान को भी ठेस लगेगी।

पहरेदार के चेहरे पर भी विश्वास की रेखाएं परिस्फुटित थीं। मनक भी ने कथन पर दृढ़ था। अन्त में यह तय हुआ कि आगामी पूर्णिमा को ी दुर्गा के स्थान पर 'धीज' कराई जाए। सभी ने यह बात मान ली। उन ों इस अंधविश्वास की सभी अभ्यर्थना करते थे कि देवी के आगे चोर के प चिपक जाते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मनक के माता-पिता के कानों तक यह बात पहुंची। पिता ने
नरम-गरम शब्दों में समझाया। परन्तु मनक यही कहता गयाह्वमैंने चोरी
की।' मां ने कहाह्व'बेटे! अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। लक्ष्मी अपनी चेटी
धन के सामने कौन नहीं झुकता! अब भी तू सच कह दे। तेरा बाल
बांका नहीं होगा। मैं इस अभियोग से तुझे निकाल दूंगी, इस कलंक से
उबार लूंगी। तुझे 'धीज' करनी होगी। दुर्गा देवी का चमत्कार तुझसे छि
नहीं है। चोर के हाथ वहां चिपक जाते हैं। सबके सामने क्या तू सारे
को लज्जित करेगा? बोल, बेटे! सच-सच कह दे। क्या तूने चोरी की है
माता की ममता रो रही थी। वह विविध प्रयत्न से अपने लाड़ले पुत्र
समझा रही थी, किन्तु सब व्यर्थ।

मनक ने हंसते हुए मां से कहाह्व'मां! तुम चिन्ता क्यों करती हो? स
को आंच नहीं। मैं सही मार्ग पर हूं। तुम मेरा इतना अविश्वास क्यों क
हो? मैंने चोरी नहीं की। मैं 'धीज' करूंगा।'

पूर्णिमा का दिन। सारे शहर में हलचल-सी हो रही थी। बड़े-ब
बालक-युवा, स्त्री-पुरुषह्वसभी देवी के मन्दिर की ओर जा रहे थे। सारे म
जनाकीर्ण थे। देखते-देखते मन्दिर के पास अपार जनसमूह एकत्रित हो गय
पांच-पांच, दस-दस के समूहों में लोग कानाफूसी कर रहे थे। मनक के
होने का किसी को विश्वास नहीं था।

समय का चक्र घूमा। प्रतीक्षा के क्षण लम्बे होते हैं। क्षण बीते,
बीते। मध्याह्न का समय आया।

मनक धीज की तैयारी कर रहा था। वह मां के पास गया। प्रणाम
कहाह्वमां! मैं धीज करने जा रहा हूं। मेरी एक बात मानोगी?'

'क्यों नहीं, बेटा! कह, शीघ्र कह। तेरे लिए मैं सर्वस्व न्यौछावर
दूंगी। बोल बेटा, बोल।'

'मां! आज मुझमें स्तनपान करने की भावना जागृत हुई है। तू मुझे क्ष
भर के लिए स्तनपान करा।'

बेटे की इस विचित्र भावना से मां को झुंझलाहट हुई। उ
कहाह्व'क्या पागलपन है! क्या बचपना है! अवस्था का भी तो ख्याल र

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ा, तू चतुर है, ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं।'

'मां! आज इस उत्कट भावना को पूरी करना ही पड़ेगा। मां, देर हो है। मुझे इनकार मत कर।'

मां ने उसकी इच्छा पूरी की। स्तनपान कर वह वहां से द्रुतगति से देवी मन्दिर की ओर चल पड़ा। मां ने अपनी अजस्र अश्रुधारा के बीच उसे दा किया। एक ही धुन में वह चला जा रहा था। उसे अपने कला-कौशल पूरा भरोसा था। कुछ ही क्षणों में वह मन्दिर के पास जा पहुंचा। लोगों उसे देखा। राजा, अमात्य, पुरोहित, नगर के गणमान्य व्यक्ति उपस्थित

राजा ने कहाह्न'मनक! अब भी समय है। व्यर्थ ही अपने को संकट में डाल। तू अपना अभियोग स्वीकार कर ले। इस देवी को साधारण मत झ। हाथ चिपक गए तो तेरा सारा वंश कलंकित होगा। अब भी चेत । मुझे विश्वास है कि तू हठ के शृंग से उतरकर सत्य के समतल पर आ एगा।'

मनक ने गंभीर होते हुए कहाह्न'माफ करें। जो कार्य मैंने किया ही नहीं कैसे स्वीकार कर लूं? अपनी आत्मा को धोखा दूं? नहीं महाराज, यह ी नहीं होगा। मैं 'धीज' करने के लिए तैयार हूं। संकल्प-दौर्बल्य का पाठ सीखा ही नहीं।'

वह ऊंचे स्थान पर बने एक मंच पर जा खड़ा हुआ। उसने देखा, मने ही नगर के नामी सेठ-साहूकार, मंत्री, राजकर्मचारी, निर्धन, धनवान क्ति बैठे हैं। उच्च स्वर से जनता को संबोधित करते हुए उसने ाह्न'साथियो! मुझ पर चोरी का झूठा अभियोग लगाया गया है। मैं आपके मने 'धीज' करने के लिए उपस्थित हुआ हूं।' देवी की ओर मुड़कर कहा, ी भवानी! तू सब जानती है। मैं ये दोनों हाथ तेरी इस वेदी पर रखकर ता हूं कि मां का स्तन-पान करने के पश्चात् मैंने चोरी नहीं की। यदि री की हो तो मेरे ये दोनों हाथ यहां चिपक जाएं।' लोगों ने सुना। सभी टक उसको देख रहे थे। भावों का आरोह-अवरोह स्पष्ट दीख रहा था।

मनक देवी की वेदी पर पांच-छह क्षण हाथ रखे रहा। फिर मुड़कर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

राजा से कहाह्न'यदि कहें तो हाथ उठा लूं या आज्ञा दें तो उन्हें और कुछ
टिकाए रखूं।' समय बीत चुका था। राजा ने कहाह्न'हाथ ऊपर उठाओ
सबके देखते-देखते उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लिए। हाथ
चिपके। वह निर्दोष साबित हुआ। लोगों में खुशी छा गई। मनक का परि
हर्ष-विभोर हो उठा। सभी अपने-अपने घर की ओर वापस जा रहे
पहरेदार का मुंह ढीला पड़ गया था। वह जमीन में गड़ा जा रहा था। मृ
के क्षणों का नैकट्य उसे भयभीत किए हुए था। आसन्न मृत्यु के आतंक
कौन अवसन्न नहीं हो जाता? वह एक शब्द भी नहीं बोल सका। उसे
पर जो विश्वास था वह भी उठ गया। वह थर-थर कांप रहा था, आंखों
सामने फांसी का झूलता हुआ फंदा नाच रहा था, शूली की अति ती
नोंक उसके कोमल-कठोर मन को बींध रही थी। अजस्र अश्रुधारा से न
धुंधला गए थे। उसने राजा से क्षमायाचना की। राजा का मन दुविधा
छटपटा रहा था। नगरसेठ के पुत्र पर लगाया गया झूठा आरोप उसे मर्मा
कर रहा था। आग्नेय नेत्र से पहरेदार को घूरते हुए उसने उसकी याचना ठु
दी, किन्तु मनक ने अपने पिता से कहलवा दिया कि पहरेदार को जीवन
दे दिया जाए। मनक ने अपनी कला का परीक्षण कर लिया।

२९. सागरचन्द और कमलामेला

द्वारका नगरी में बलदेव का पौत्र सागरचन्द नामक एक राजकुमार र
था। वह बहुत रूपवान् था। उसी नगरी में कमलामेला नाम की एक सु
राजकुमारी रहती थी। उसकी सगाई उग्रसेन राजा के नाती धनदेव से हुई

एक बार घूमते-घूमते नारदजी सागरचन्द राजकुमार के पास आ
राजकुमार ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया। उनको उच्च आसन
बिठाकर पूछाह्न'भगवन्! आप कैसे पधारे? क्या कोई आपने आश्चर्य देखा

नारद ने कहाह्न'हां।'

उसने पूछाह्न'कहां?'

नारद ने कहाह्न'इसी नगरी में कमलामेला नाम की राजकुमारी ब
रूपवती है। विश्व में उसकी मानता करने वाली स्त्री मुझे नजर नहीं आ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

न्तु उसकी सगाई हो चुकी है।' सागरचन्द के पूछने पर नारद ने अगली ी बात उसे बताई। राजकुमार कमलामेला पर मुग्ध हो गया। उसने नारद पूछाह्न'उसके साथ मेरा संयोग कैसे हो सकता है?'

नारद ने कहाह्न'मैं नहीं जानता।' इतना कह वे चले गये।

राजकुमार कमलामेला के रूप पर मोहित हो चुका था। इसलिए उसे न द आती, न भोजन भाता और न किसी काम में उसका मन लगता। उसने कुमारी का एक चित्र बनवाया और वह उसी के ध्यान में लीन रहने ा। प्रतिपल उसका नाम रटता रहता।

उधर नारदजी सागरचन्द से छुट्टी ले सीधे कमलामेला राजकुमारी के प गये। उसने उनका उचित सम्मान किया। उसने पूछाह्न'आज आप कैसे ारे? क्या कोई आपने आश्चर्य देखा?' नारदजी ने कहाह्न'हां, एक नहीं दो श्चर्य देखे हैं। मैंने सागरचन्द राजकुमार जैसा रूपवान् पुरुष कहीं दूसरा ं देखा और धनदेव जैसा कुरूप व्यक्ति भी नहीं देखा।' सागरचन्द का ान सुनकर राजकुमारी उस पर मोहित हो गई। धनदेव के प्रति उसे घृणा लगी। नारदजी ने उसे आश्वासन दिया।

वहां से नारदजी सीधे सागरचन्द के पास पहुंचे। उसे राजकुमारी की ी बात कह सुनाई। सागरचन्द कमलामेला पर पहले से ही मुग्ध हो रहा । नारदजी की बात सुनते ही उसकी हालत और बिगड़ गई। वह दिन-रात कुमारी के ध्यान में खोया रहने लगा। उसकी यह दशा देख मां तथा य राजकुमार व्याकुल हो उठे।

एक बार सागरचन्द अमनस्क-भाव से बैठा था। उसका मित्र शंबकुमार के से आया और उसने पीछे से उसकी आंखें मींच लीं। सागरचन्द को लूम नहीं हुआ कि कौन है? वह सहजतया बोल पड़ाह्न'कमलामेला!'

शंब ने कहाह्न'कमलामेला नहीं, कमलमेल।' राजकुमार सकपका गया र उसने अपनी सारी बात उसे बताते हुए कहा कि जैसे भी हो, लामेला से मुझे मिलाना होगा।

दूसरे कुमारों ने शंब से कहा कि किसी भी तरह से सागरचन्द की छा पूरी करनी चाहिए। शंब नहीं माना। तब कुमारों ने मद्य पिलाकर उससे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

स्वीकृति ले ली। मदिरा का नशा उतर जाने पर शंब को होश हुआ। उ
सोचाह्नहाय! यह मैंने क्या कर दिया? मैंने उन्हें झूठा विश्वास क्यों दिय
परन्तु मुझे अपने वचन पर दृढ़ रहना चाहिए। अब ऐसा उपाय करना चा
कि मेरे वचन का सम्यग् निर्वाह हो सके।

उसी दिन से उसने देवी की आराधना शुरू कर दी। कुछ ही दिनों
बाद देवी उसकी सामने उपस्थित हुई और इच्छित वर मांगने को कहा।
ने अच्छा अवसर जान उससे रूपपरावर्तिनी विद्या मांगी। देवी ने उसे विद्य
दी।

इधर राजकुमारी और धनदेव के विवाह की तैयारियां हो रही
विवाह की निश्चित तिथि पर शंब ने विद्याधर का रूप बनाया
कमलामेला का अपहरण कर वह उसे रैवतक उद्यान में ले गया। राजकु
सागरचन्द और अन्य कुमार वहां उपस्थित थे। सागरचन्द व कमलामेला
यथाविधि पाणिग्रहण हुआ। दोनों उद्यान में क्रीड़ा करते हुए सुख से
लगे।

राजकुमारी के अपहरण से लोगों में खलबली मच गई। चारों
क्षोभ छा गया। छानबीन करने पर भी कोई नहीं जान सका कि राजकु
का अपहरण किसने किया है। लोग इधर-उधर दौड़े। नारदजी से पू
उन्होंने कहाह्न'मैंने राजकुमारी को रैवतक उद्यान में देखा था। कोई विद्या
उठा ले गया हैह्नऐसा लगता है।' यह समाचार जब कृष्ण के पास पहुंचा
वे दल-बल सहित संग्राम के लिए चल पड़े। शंबकुमार विद्याधर का
बनाकर युद्ध करने लगा और उसने अनेक राजाओं को पराजित कर दि
अनेक राजा रणक्षेत्र से भाग गये। अब शंब कृष्ण के साथ युद्ध करने ल
कृष्ण को बहुत क्रोध आया। परन्तु कृष्ण के उग्र रूप धारण करने से प
ही शंब अपना असली रूप प्रगट कर कृष्ण के चरणों में गिर पड़ा।

कृष्ण ने शंब को डांटा। शंब ने कहाह्न'पिताजी! इसमें मेरा कोई
नहीं है। राजकुमारी झरोखे में से कूदकर आत्महत्या करना चाहती थी, मैं
देखकर उसे वहां से ले आया।' कृष्ण चुप हो गये। बात बीत चुकी
कृष्ण ने धनदेव के पिता उग्रसेन को शान्त करके भेज दिया।

इधर सागरचन्द और कमलामेला सुखोपभोग करते हुए अपना जी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

न कर रहे थे। एक बार भगवान् अरिष्टनेमि उसी नगरी में पधारे। लामेला और सागरचन्द दर्शनार्थ गये। भगवान् का प्रवचन सुनकर दोनों ने णुव्रत' ग्रहण किया। अब दोनों का जीवन धार्मिक क्रियाओं में अधिक ने लगा। सागरचन्द अष्टमी-चतुर्दशी को एकान्त में या श्मशान में 'एक त्रिक-प्रतिमा' को धारण करता था। ऐसे कई दिन बीते।

धनदेव ने सागरचन्द की सारी दिनचर्या जान ली। उसके मन में कुमारी कमलामेला के न मिलने से रोष बढ़ा हुआ था। वह ज्यों-त्यों ला लेना चाहता था। उसने तांबे की सुइयां बनवाईं और उन्हें ले वह वहां पहुंचा, जहां सागरचन्द अपनी प्रतिमा में एकचित्त हो बैठा था। उसने ारचन्द की बीसों अंगुलियों के नखों में वे तांबे की सुइयां चुभो दीं। ारचन्द को असह्य पीड़ा होने लगी। 'पडिमा' के कारण वह कुछ नहीं ला। समभाव से पीड़ा को सहन कर उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो गया। कर वह देव बना।

सागरचन्द के समय पर घर न पहुंचने पर लोग उसे इधर-उधर ढूंढने को ड़े। कहीं पता नहीं लगा। लोग आक्रन्दन करने लगे। आखिर गुप्तचरों ने पता ा लिया। सागरचन्द को मरा पड़ा देख सारे नगर में क्षोभ छा गया। तांबे कीलों के आधार पर वे लोग ताम्र-कुट्टक के पास गये। उससे सही नकारी मिल गई कि ये तांबे की सुइयां धनदेव ने उससे बनवाई थीं। कुमारों को क्रोध आया। वे अपनी सेना लेकर धनदेव से युद्ध करने निकल । धनदेव भी अपने दलबल सहित रणक्षेत्र में आ डटा। दोनों ओर घोर ाम होने लगा। देव सागरचन्द ने अपने ज्ञान से यह जाना और शीघ्र ही क्षेत्र में जा पहुंचा। उसने मध्यस्थता कर दोनों को समझाया। दोनों मान गये। द्ध बन्द हो गया।

कुछ समय पश्चात् राजकुमारी कमलामेला ने भगवान् के पास भागवती ा ग्रहण की।

३०. व्रतनिष्ठा

'सुनते हो! आज घर में खाने के लिए अनाज नहीं है। दोनों बच्चे ू-मुन्नू बिलख रहे हैं। दस महीने मैंने ज्यों-त्यों घर-गृहस्थी चला ली।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परन्तु अब मेरे वश की बात नहीं रही। जितना जेवर था वह बिक गया। अ
अड़ोस-पड़ोस वाले भी अपनी स्थिति जानने लग गए। वे भी अब
सहायता देने से हिचकते हैं। आखिर इस प्रकार निकम्मे बैठने से तो व
चलेगा नहीं। कुछ तो करना ही होगा। यदि कुछ नहीं बना तो जहर खा
मरना पड़ेगा। मैं भूखी रह सकती हूं, किन्तु चुन्नू-मुन्नू को भूख से तड़पते
देख सकती।' सरोज ने एक ही सांस में सारी बात अपने पति नगराज
कह दी।

नगराज अपने नगर का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था। आस-पास के ल
उसे 'राजाबाबू' कहते थे। कई शहरों में उसकी दूकानें थीं। वह सादगी
रहता। गरीबों की मदद करता। उनकी आवश्यक जरूरतों को पूरी कर
व्यवसाय में उसे लाभ होता। उसके एक स्त्री और दो पुत्र थे। मकान, मो
घोड़े आदि थे। किन्तु काल का चक्र पलटा। उसका व्यवसाय घाटे में च
लगा। मुनीम, गुमाश्ते एक-एक कर रकम हड़पने लगे। व्यवसाय बन्द
गया। जो कुछ ऋण चुकाना था वह आभूषण, मकान, मोटर आदि बेच
चुका दिया गया। उसने सोचाह्नपैसा हाथ का मैल है। वह फिर मिल सक
है, किन्तु इज्जत में धब्बा लग जाने से वह फिर नहीं मिल सकती। वह अ
दर-दर का भिखारी है। सरोज की बात उसे कांटों-सी चुभी, किन्तु वह स
थी। उसने कहाह्न'सरोज! तू देवी है। तेरे जैसी पत्नी पा मैं धन्य हूं। दु
दिनोंदिन बढ़ रहा है, धैर्य से काम लेना चाहिए। मैं अपने मित्र से पहले
पचास रुपये उधार ले आया हूं। मैं कल ही यहां से दूर देश जाने वाला
तब तक तू इनसे काम चलाना। मैं शीघ्र ही वापस लौट आऊंगा।'

सरोज ने उसे दुःखभरे हृदय से विदा दीह्न'आपकी यात्रा मंगलमय हो
वह वहां से चल पड़ा। पास में फूटी कौड़ी भी नहीं थी। भटकते-भट
एक महीने बाद वह एक छोटे-से कस्बे में जा पहुंचा। भूख के मारे उस
शरीर क्षीण हो गया था। कभी भरपेट भोजन मिलता तो कभी एक कौर
नसीब नहीं होता। कभी कुछ मजदूरी कर पेट भरता तो कभी जंगल में फ
फूल खाकर रह जाता। आज वह हार चुका था। वह एक सेठ के घर पहुंच
पानी मांगा। भरपेट पानी पी चुकने के बाद उसने सेठ से कहाह्न'मैं नौक
करना चाहता हूं। आप अपने घर में मुझे नौकर रख लें।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सेठ को नौकर की आवश्यकता थी। उसने कहाह्न'देखो, मेरे यहां कई कर-चाकर काम करते हैं। सबको अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार वेतन लता है। तुम भी खुशी से रह सकते हो। यहां तीन प्रकार के काम हैंह्न

१. दूसरों से कुछ धान लेना पड़े तो एक मन का पैंतालीस सेर लेना र देना पड़े तो एक मन का पैंतीस सेर देना। यदि यह काम करोगे तो तुम्हें सिक बीस रुपए मिलेंगे।

२. दूसरों को अस्सी रुपये उधार देकर सौ रुपये लिखना और सौ रुपये कर अस्सी लिखना। यदि यह काम कर सकोगे तो मासिक पन्द्रह रुपए लेंगे।

३. तीसरा काम है मेरे अनाज के गोदामों की रखवाली करना। यदि काम कर सकोगे तो वार्षिक एक रुपया रोटी-कपड़ा सहित मिल जाएगा।

उसने सुना, सोचाह्नयदि पहले दोनों काम स्वीकार करता हूं तो तिक बन जाता हूं। यदि तीसरा काम स्वीकार करता हूं तो काम नहीं सकता। क्या करूं? उसने सोचा, खूब विचार किया। अन्त में यह चय किया कि वह चन्द चांदी के टुकड़ों के लिए अपना ईमान नहीं गा। लक्ष्मी चंचल है। वह आती-जाती रहती है। तीसरा काम उसने कार कर लिया।

आज वह गोदाम का चौकीदार है। अनाज के हजारों बोरे आते-जाते उनका पूरा लेखा-जोखा वह रखता है। न उसे खाने-पीने की चिन्ता है र न कपड़े की। सारी पूर्ति आवश्यकतानुसार हो जाती है।

इधर सरोज ने भी काम ढूंढ लिया था। वह दूसरों के घर में वासन जने चली जाती। कभी पिसाई भी कर लेती। उसे दो-तीन रुपये मिल ते। इससे वह अपना काम चला लेती। पति की कमाई की उसे अपेक्षा ं रहती थी। चुन्नू-मन्नू भी बड़े हो गये थे। उनमें हठ कुछ कम हो गया । शायद उन्हें भी अपनी वास्तविक स्थिति मालूम हो गई थी।

इसी प्रकार तीन वर्ष बीत गये। सेठ गिरधारीलाल अपने चौकीदार राज से प्रसन्न था। उसकी कार्य-तत्परता से वह बहुत संतुष्ट था। उसके लिदान से वह आकृष्ट था। उसने सोचाह्न'यदि मैं अपने व्यवसाय में इसको ड़ीदार बना लूं तो मालामाल हो जाऊंगा। यह कुलीन व सच्चा व्यक्ति

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नजर आता है। इसके कुल की परीक्षा करनी चाहिए।'

दूसरे दिन प्रातः ही सेठ ने नगराज को बुला भेजा और कहाह्न'देख आज मैं तुम्हारे गांव की ओर जा रहा हूं। वहां मेरे कई संबंधी हैं। उनके ब्याह है। वापिस लौटते तुम्हारे घर हो आऊंगा। कुछ समाचार कहलाना तो मुझे कह दो, और कुछ भेजना हो तो मेरे साथ भेज सकते हो।' नगर ने सुना। आंखें डबडबा आयीं। उसने कहाह्न'मालिक! क्या भेजूं? भेजने लिए है ही क्या? तीन वर्षों में तीन रुपये कमा सका हूं। घर पर दो ब और मेरी पत्नी है। तीन रुपये से उनका एक महीने का गुजारा भी नहीं होग मुझे शर्म आती है अपने पुरुषत्व पर। पर मुझे इतना हर्ष जरूर होता है कि इतने कष्ट में भी नैतिक बना रहा। घर पर बच्चों को प्यार कहना और त रुपयों के नींबू लेते जाना। वहां नींबू नहीं होते। अचार के काम आ जाएं कुछ सहारा भी लगेगा।' इतना कह चुकने पर उसका गला रुंध गया। सिसकता हुआ अपने स्थान पर चला गया।

कई दिनों के सफर के बाद सेठजी नागौर जा पहुंचे। अपने मुनीम घर पूछते-पूछते उसके घर पहुंचे। नगराज की स्त्री ने उनका आतिथ्य-सत्व किया। अपने पति के समाचार पा वह पुलकित हो उठी। वियोग में अ प्रिय का सन्देश भी साक्षात् उनकी उपस्थिति जितना आनन्ददायी था। आनन्दविभोर हो उठी और सेठ से कई प्रश्न भी कर बैठी।

कालचक्र घूमा। उस नगर के राजा का इकलौता राजकुमार बीमार गया। वैद्य बुलाये गए। तांत्रिक भी आ पहुंचे। राजा-रानी विह्वल हो रहे उनके मन में रह-रहकर अनिष्ट आशंकाएं आ रही थीं। राजकुमार की वेद असह्य थी। राजवैद्य ने नाड़ी देखीह्नठीक-ठीक रोग को पकड़ा अ बोलाह्न'महाराज! चिन्ता जैसी कोई बात नहीं। रोग असाध्य अवश्य किन्तु मेरे पास भी एक असाधारण औषधि है। वह रोग को शांत कर देग परन्तु....' वैद्य रुक गया।

राजा की जिज्ञासा बढ़ी। वह प्रेम-विह्वल हो बोल उठाह्न'परन्तु क्य मैं अपने प्रिय पुत्र के लिए सब कुछ कर सकता हूं।' वैद्य ने कहाह्नमहारा दवाई का अनुपान हैह्ननींबू का रस। नींबू हमारे देश में नहीं होते। यदि च पांच घंटों तक राजकुमार को नींबू न दिया गया तो....'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

राजा विस्मय में पड़ गया। नींबू एक साधारण वस्तुह्नपरन्तु उस समय बहुमूल्य बन गई थी। उसने सारे गांव में पटह फेरा। प्रत्येक गली-गली पटहकार यह घोषणा करता चला जा रहा थाह्न'जो कोई दो सेर नींबू राजा महल में पहुंचायेगाह्नउसको मुंहमांगा इनाम दिया जाएगा।' लोगों ने सुना, न्तु नींबू कहां?

उस गली में भी घोष सुना गया। नगराज की पत्नी सरोज ने उस हकार से कहाह्न'जाओ, राजा से कह दो, मैं अभी नींबू लिए महल में आ हूं।'

राजा ने सुना। उसकी खुशी का पार न रहा।

सरोज एक थाल में नींबू सजाकर राजा के पास ले गई। राजा ने उसका मान किया। वैद्य ने उपचार चालू किया। कुछ ही देर बाद राजकुमार को ा आया। उसने पानी मांगा। पानी पी चुकने के बाद उसने कहाह्न'अब मेरी ीयत कुछ ठीक है। मुझे और नींबू का रस पिलाओ।' वैद्य की इच्छानुसार का उपचार चालू रहा।

दूसरे दिन राजकुमार स्वस्थ हो गया। सरोज को पारितोषिक देना था। आयी। राजा ने कहाह्न'बहन! तूने मेरे पुत्र को जीवन-दान दिया है। जो छ चाहोह्नमांगो।' उसने कहाह्न'राजन्! मैं कुछ लेना नहीं चाहती। देश के धिपति के प्रति मेरा कर्तव्य था, मैंने उसे निभाया है। मेरी वस्तु आपके म आयी, इससे बढ़कर और क्या हर्ष हो सकता है?' राजा ने उसे मांगने लिए बहुत कहा, परन्तु वह राजी नहीं हुई। तब राजा ने अपने कोषाध्यक्ष कहाह्न'जाओ, इसके घर एक लाख नगद, एक लाख का जेवर और अनेक त्रादि भेज दो। यह मेरी बहन है।'

जीवन का कालचक्र पुनः घूमा। दुःख जाता रहा। सुख की घड़ियां नने लगीं। सारे ठाट-बाट पहले-जैसे ही हो गये। वह सुख से जीने लगी।

इधर सेठ गिरधारीलाल को आये आज पूरे चार दिन हो गए थे। सरोज आतिथ्य उन्हें आकृष्ट किए हुए था। उसकी सौजन्यता और विनम्र वहार से वे फूले जा रहे थे। उन्होंने विदा लेनी चाही। सरोज ने ाह्न'आपके शुभागमन से मेरी तकदीर चमक उठी। आप महान् हैं। आप

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जा ही रहे हैं। यह पत्र उन्हें दे देना।'

नगराज ने अपने मालिक को आये देख उन्हें पिछला सारा विवरण
दिया। पूछाह्न'घर पर खुशी है।' 'हां, सब सानन्द है। परन्तु तुम्हें श
बुलाया है। क्या तुम जाना चाहते हो?' नहीं, सेठ साहब! मैं वहां जा
करूं भी तो क्या? यहां मजे में तो हूं। वहां घर-गृहस्थी की चिन्ता मुझे
डालेगी।' नहीं, तुम्हें जाना होगा। एक बार तुम जा आओ।'

सेठ के अति आग्रह से नगराज अपने नगर की ओर चल पड़ा। जा
जाते सेठ ने उसे यह कहकर सौ रुपये दिये कि मैं तेरी ईमानदारी पर प्रसन्न
और ये रुपये तुझे इनाम देता हूं। अपना इनाम लिये वह खुशी से चला
रहा था। रास्ते में नाना प्रकार के विकल्प उठते, स्वयं समाधान करता,
उन्हीं में उलझ जाता।

नगर की छोटी-मोटी सड़कों से होते हुए वह अपने मकान वाली ग
में जाने लगा। उसे अपनी छोटी कुटिया वहां दिखाई नहीं दी। उसे विस
हुआह्नयह क्या? क्या मेरी पत्नी-बच्चे सभी मर गए या उन्हें यहां से निक
दिया गया? वह इसी उधेड़बुन में था कि उसकी स्त्री एक विशाल मकान
बाहर आयी और उसे अन्दर ले गई। वह अवाक् था। उसे सारी घटना
सुनाई।

उसने मुस्कराते हुए कहाह्न'सरोज! जानती हो, यह ईमानदारी का प्र
है। दुःख में भी हम अपने नियमों पर अटल रहेह्नइसी का यह फल है।'

३१. दो रूपक

दो साधक साधना कर रहे थे। नारद घूमते-घूमते वहां आ निक
दोनों ने कहाह्न'आप देवलोक जा रहे हैं। वापिस लौटते समय विधाता
पूछना कि हमारी मुक्ति कब होगी?' नारद जी वहां से चले गये। दो मह
के बाद नारदजी वापिस आये। प्रथम साधक को कहाह्न'विधाता ने कहा
कि तुम्हारी मुक्ति चार हजार वर्ष बाद होगी।' सुनते ही वह अवाक्
गया। सोचा, मैंने दस हजार वर्ष तक तपस्या की, कष्ट सहे, भूख

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

स सही, शरीर को क्षीण कर दिया, फिर भी चार हजार वर्ष! मैं इतने दिन र नहीं रुक सकता। वह साधना को छोड़ चला गया। नारदजी दूसरे धक के पास गये। उससे कहा, 'विधाता ने तुम्हारी मुक्ति का हाल भी बता दिया है। जो वह पीपल का पेड़ है, उसके जितने पत्ते हैं, उतने र्षों बाद तुम मुक्त हो सकोगे।' साधक ने सुना, सुख की सांस ली। चाह्नजन्म-मरण की परम्परा की एक सीमा तो हुई। मैंने दस हजार वर्षों के स्या की, कष्ट सहे, शरीर को क्षीण किया। वह निष्फल तो नहीं गया। और भी अधिक उत्साह से भगवान् के ध्यान में लग गया। नारदजी ने ाह्न'धीरज का फल मीठा होता है। साधना में धैर्य चाहिए।'

कुत्ता एक घर से मिठाई की एक थैली चुरा लाया। एकान्त में उसे ड़, मिठाई खाने लगा। पूरी मिठाई खा चुकने के बाद नीचे पड़े दाने भी लिये, इतने में एक गधा आया। उसने उस मिठाई के चिकने कागज को लिया। घरवालों ने उस थैली को ढूंढा, वह मिली नहीं। बच्चों से पूछा, घर को छान मारा। आस-पास के बरामदे में भी देखाह्नकिन्तु कोई पता ं लगा। आखिर सोचाह्नशायद नौकर ले गया होगा। घोड़े को पानी लाकर जब वह घर लौटा तो सेठानी ने तड़ककर कहा, 'शर्म नहीं आती, ने की चीज भी चोरी कर ले जाते हो, मांग कर ले जाते तो मुझे इतना ख नहीं होता। ऐसा चोर नौकर मुझे नहीं चाहिए। जाओ, अपना रास्ता ।' नौकर ने कुछ कहना चाहा, किन्तु कौन सुने उसकी! उसने चाह्न'किसी दुष्ट ने चोरी की और दण्ड मुझे मिला। हाय रे राम, तेरा य!'

३२. ईर्ष्या का फल

एक गांव में एक बुढ़िया रहती थी। वह गोबर थाप-थापकर अपना ारा करती थी। एक बार उसने किसी व्यन्तर देव की आराधना की। देव की भक्ति से संतुष्ट हुआ। वह प्रगट हुआ। उसने बुढ़िया से वर मांगने कहा। बुढ़िया होशियार थी। उसने सोचा, अवसर को हाथ से नहीं जाने चाहिए। उसने कहाह्न'यदि आप मुझ पर संतुष्ट हैं तो मैं जब कभी कुछ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मांगूं तो मुझे दे देना। देव की शक्ति अपरिमित होती है। देवता
कहाह्न'तथास्तु।' उसने चार कोठों वाला एक सुन्दर भवन मांगा। अ
दास-दासियां वहां रहने लगीं। वह सुख से जीवन बिताने लगी।

एक दिन बुढ़िया के घर उसकी एक पड़ोसिन आयी। उसके घर
सज-धज को देख उसे विस्मय हुआ। वह बुढ़िया से मीठी-मीठी बातें क
लगी। बातों ही बातों में उसने जान लिया कि बुढ़िया इतनी जल्दी कैसे
बन गई। बस उसने भी व्यन्तर देव की आराधना शुरू कर दी। भक्ति-भ
से उसने व्यन्तर देव को रिझा लिया। देव प्रसन्न होकर उपस्थित हुआ
उससे वर मांगने को कहा। पड़ोसिन ने अवसर का लाभ उठाना चाहा। ई
तो थी ही। उसने कहाह्न'मैं चाहती हूं कि जो वस्तु तुम बुढ़िया को दो
मेरे दुगुनी हो जाए।'

वही हुआ। जो वस्तु बुढ़िया मांगती उसके घर दुगुनी
जाती। बुढ़िया के चार कोठों वाला एक मकान था तो पड़ोसिन के
कोठों वाले दो मकान थे। बुढ़िया के चार घोड़े और आठ बैल थे
उसके आठ घोड़े और सोलह बैल थे। इसी प्रकार उसके घर सारी च
दुगुनी थीं।

बुढ़िया को जब इस बात का पता लगा तो वह बहुत कुढ़ी।
पड़ोसिन के इस व्यवहार को सहन नहीं कर सकी। उसने व्यन्तर देव
वरदान मांगा कि उसके चार कोठों वाला घर गिर पड़े और उसके स्थान
एक घास की झोंपड़ी बन जाए। वैसा ही हुआ। उसकी पड़ोसिन के दोनों
गिर पड़े और उनके स्थान पर घास की दो झोंपड़ियां बन गईं।

तत्पश्चात् बुढ़िया ने दूसरा वर मांगा कि उसकी एक आंख फूट जा
पड़ोसिन की दोनों आंखें फूट गईं। तत्पश्चात् बुढ़िया ने कहाह्न'मैं एक ह
से लूली और एक पांव से लंगड़ी हो जाऊं।' वैसे ही हुआ। पड़ोसिन
दोनों हाथ-पैर टूट गए।

बुढ़िया तो ज्यों-त्यों अपना काम चला लेती। किन्तु पड़ोसिन बेच
अपंग हो चुकी थी। वह पड़ी-पड़ी सोचती की यह सारा असंतोष का प
है। यदि मैं बुढ़िया के धन को देखकर ईर्ष्या न करती तो मेरी यह दशा
होती।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३३. भक्ति और बहुमान

एक ऊंचा पहाड़ था। उसमें कई गुफाएं थीं। एक गुफा में शिव की
क मूर्ति थी। एक ब्राह्मण और एक भील शिव की पूजा करते। ब्राह्मण नीचे
ल में स्नान करता। पूजा के कपड़े पहनता। एक थाली में फल-फूल
ाकर ले जाता। पहले शिव मूर्ति को सुगंधित जल से स्नान कराता, फिर
ार, चन्दन आदि सुगंधित द्रव्यों से लेपकर पूजा करता। तत्पश्चात्
ांजलि हो भक्तिभाव से अर्चना करता। किन्तु उसके मन में शिवजी के
ा बहुमान नहीं था।

भील अपने कार्य से निवृत्त हो मूर्ति की पूजा करने ऊपर जाता। मुंह में
ी भरकर मूर्ति के ऊपर थूकता। इस प्रकार कई बार कर चुकने के बाद
मयता से देखता रहता। उसके पास न फल थे, न फूल थे। किन्तु उसके
में शिवजी के प्रति बहुमान था। अटूट श्रद्धा थी। शिवजी उसकी सहज
क्ति से प्रसन्न हुए। प्रतिदिन वे उसके पास उपस्थित होते और बातचीत
ते।

एक दिन ब्राह्मण ने उनके आलाप-संलाप को सुन लिया। मन में क्रोध
या। वह मूर्ति के पास अकबक बकने लगा। उसने कहाह्न'यह कोई नीच
टि का शिव है, जो एक नीच व्यक्ति के साथ मंत्रणा करता है। जो
विभूत नहीं है उसके साथ बोलना भी पाप है।'

शिवजी की मूर्ति से आवाज आयीह्न'यह भील मुझे बहुमान देता है।
की श्रद्धा विशुद्ध है। तुम्हारे में इसकी कमी है।'

एक दिन शिवजी ने अपनी एक आंख निकाल ली। लहू बहने लगा।
ह्मण पूजा करने आया। शिवजी की एक आंख न देख रोने लगा। कुछ देर
द शांत हो घर चला गया।

भील आया। उसने देखा कि शिवजी की एक आंख फूट गई है, लहू
रहा है। उससे रहा नहीं गया। अपना तीर निकाला। उससे अपनी एक
ख बाहर निकाल शिवजी के लगा दी। दूसरे दिन शिवजी ने ब्राह्मण को
ी बात कही। ब्राह्मण को विश्वास हुआ कि उसमें बहुमान की कमी है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३४. काकिणी की याचना

पाटलिपुत्र में अशोक नाम का राजा राज्य करता था। वह चन्द्रगुप्त
पौत्र और बिन्दुसार का पुत्र था। उसका पुत्र कुणाल उज्जयिनी नगरी
सूबेदार था।

कुणाल जब आठ वर्ष का था, तब राजा ने स्वयं एक पत्र लिख
'अधीयतां कुमारः'ह्नकुमार अब विद्याध्ययन करना प्रारम्भ कर दे। संयोग
उस समय कुणाल की सौतेली मां पास में बैठी हुई थी। उसने सोचा, कु
को नीचा दिखाने का यह अच्छा अवसर है। रानी ने राजा से पत्र मांगा।
रानी के हाथ में देकर राजा दूसरे कार्य में लग गया। रानी ने चुपके से
सलाई लेकर थूक से 'अ'कार पर एक अनुस्वार लगा दिया। अब 'अधीय
के स्थान पर 'अंधीयतां' हो गया।

रानी ने पत्र राजा को लौटा दिया। प्रमादवश राजा ने उसे पुन खोल
नहीं देखा। उस पर अपनी मोहर लगाकर उज्जयिनी की ओर रवाना
दिया।

पत्र कुणाल के पास पहुंचा। कुणाल का परिचायक पत्र पढ़कर हरक
दंग रह गया। कुमार के बार-बार पूछने पर भी उसने अपना मौन नहीं खोल
तब कुमार ने स्वयं वह पत्र पढ़ा। उसमें लिखा थाह्न'अंधीयतां कुमारः'ह्नकु
अन्धे हो जाएं। कुमार दुविधा में पड़ गया। उसने सोचा, मौर्यवंश की अ
अप्रतिहत होती है। कोई भी व्यक्ति उसका उल्लंघन नहीं कर सकता,
भला मैं स्वयं अपने पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन कैसे करूं? कुमार
लोहे की तप्त सलाई लेकर अपनी आंखें नष्ट कर लीं।

राजा अशोक ने जब यह बात सुनी, तो उसे बहुत दुःख हुआ। अं
उज्जयिनी का प्रभुत्व दूसरे राजकुमार को दे दिया गया और कुमार कुण
को एक छोटा-सा गांव दे राजी कर दिया।

कुणाल अपना जीवन उसी गांव में बिताने लगा।

कुणाल गायन-विद्या में अत्यन्त निपुण था। वह अज्ञात वेश में गा
बजाता हुआ देश-देश में घूमने लगा। एक बार वह पाटलिपुत्र जा पहुं
राजा के कानों तक यह बात पहुंची। राजा ने उसका गायन सुनने की इ
प्रकट की। तदनुसार राजा अशोक के सामने एक पर्दे के पीछे उसने अ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

यन-विद्या का प्रदर्शन किया। राजा उसकी गायन-विद्या से मुग्ध हो गया र उसे कुछ मांगने को कहा।

गायक कुणाल ने अपना परिचय देते हुए कहाह्न'महाराज! मैं चन्द्रगुप्त प्रपौत्र, बिन्दुसार का पौत्र और सम्राट् अशोक का नेत्र विहीन पुत्र हूं और पसे केवल एक काकिणी (एक सिक्का) की याचना करता हूं।'

यह सुनते ही सम्राट् अशोक को बहुत दुःख हुआ। पुत्र के अन्धे होने घाव ताजा हो गया। पुत्र को देखने की उसकी उत्कंठा बढ़ी। पर्दा हटा ा गया। राजा ने अंधे कुणाल को गले लगाया और रोते-रोते कहा, ाज तेरी यह दशा हो गयी कि तू काकिणी की याचना कर रहा है।'

राजमंत्रियों ने अशोक को बताया कि महाराज! क्षत्रियभाषा में किणी के बहाने कुणाल राज्य की याचना कर रहा है। इस पर अशोक पूछाह्न'नेत्र-विहीन मनुष्य राज्य को कैसे चला सकेगा?' कुणाल कहाह्न'महाराज! मेरे एक पुत्र है, उसके लिए राज्य की अभ्यर्थना करता

राजा ने पूछाह्न'पुत्र कब उत्पन्न हुआ?'

कुणाल ने कहाह्न'साम्प्रतम्ह्नअभी हाल ही उसका जन्म हुआ है।'

राजा अशोक ने उसे अपने पास बुला लिया और उसका नाम 'संप्रति' ा। अपने पौत्र को देख वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने वचनानुसार उसे य सौंप दिया।

३५. आसुरी वृत्ति

एक गांव में पंडितजी रहते थे। प्रतिदिन भागवत कथा पढ़ते थे। एक ा पुस्तक लाना भूल गए। पंडितजी ने अपना झोला संभाला। पुस्तक नहीं । मन में सोचा बिना पुस्तक के भागवत कथा कैसे करूंगा? इधर परिषद् एक हरिजन बैठा हुआ था। उसने पंडितजी की कठिनाई को समझ लिया। ने पंडितजी से कहाह्नआप चिन्ता न करें। पुस्तक यहीं बैठे-बैठे आपको लब्ध हो जाएगी। पंडितजी ने कहाह्नकैसे? हरिजन मंत्रों का ज्ञाता था।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उसने मंत्र पढ़ा और पुस्तक पंडितजी के सामने आ गई। पंडितजी
आश्चर्य हुआ। उसने सोचाह्नइस व्यक्ति से यह विद्या सीखनी चाहि
पंडितजी मंत्र-विद्या सीखने के लिए उसके घर गए। हरिजन ने कहाह्नयह
श्मशान में सिद्ध होगा। अतः आप वहां चलें। दोनों श्मशान में गए। हरि
ने कुंडाला बनाकर पंडितजी को अन्दर बिठाया। पानी में देखने को क
काफी समय बीत गया, पर पंडितजी को कुछ भी दिखाई नहीं दिया। पू
पर पंडितजी ने कहाह्नमुझे कुछ भी नहीं दिख रहा है। तब हरिजन ने अ
इष्टदेव का आह्वान कर पूछाह्नक्या बात है? इष्ट ने कहाह्नपहले इस ब्राह
को मांस, मदिरा का सेवन कराओ, फिर मंत्र सिद्ध होगा। जिसका ह
पवित्र और शुद्ध होता है, खान-पान शुद्ध होता है वहां आसुरीवृत्ति व
देव भी नहीं आते। पंडितजी को जब यह बात कही गई तो उन्होंने स्प
इन्कार कर दिया। वे बिना मंत्र साधे ही घर आ गए।

३६. कायोत्सर्ग का प्रभाव

भगवान पार्श्व के अंतिम शिष्य थेह्नसुदर्शन तथा केशीकुमार श्रम
एक सघन जंगल में कापालिक सुकर्ण का आश्रम था। वह शाक्त सम्प्र
का उपासक था। शाक्त सम्प्रदाय में सुरा और सुन्दरी को ही स्वर्गप्राप्ति
साधन माना जाता था। मालविका सुकर्ण की प्रियतमा थी। सुकर्ण
सप्ताह से 'कालदंड' की सिद्धि के लिए प्रयत्न कर रहा था। सैकड़ों पशु
की बलि दी जा चुकी थी। आज उसका अन्तिम दिन था। उसकी सिद्धि
लिए नरबलि की आवश्यकता थी। सुकर्ण इस बार अत्यधिक जागरूक थ
क्योंकि वह पहले भी इसमें दस बार असफल हो चुका था। ग्यारहवीं
वह दृढ़ संकल्प से उसे सिद्ध करना चाहता था। चारों ओर नरबलि के लि
पुरुषों को खोजा जा रहा था। उस दिन पांच जैन मुनि उसी जंगल को
कर अपने गन्तव्य की ओर जा रहे थे। सुकर्ण के आदमियों ने उनको पक
लिया। वे उन्हें आश्रम में ले आए। मालविका ने पांचों मुनियों में से
तरुण मुनि (सुदर्शन) को बलि के लिए चुना। तरुण मुनि ने अपने वृद्ध
से कुछ कहा। गुरु ने उनको धैर्य और साहस बंधाते हुए कहाह्नवत्स! उप
सामने है, किन्तु धर्म की हमेशा जय होती है। तुम धर्म में दृढ़ रहना।
सबकी रक्षा करने वाला है। गुरु का संबल लेकर मुनि सुदर्शन मालविका

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

थ चले गए। काली माता के सामने उनको खड़ा कर दिया गया। सुकर्ण
मंत्रोच्चारण चल रहा था। मुनि के चेहरे पर न कोई शिकन, न कोई भय
। वे प्रतिमा के सामने कायोत्सर्ग की मुद्रा में अविचलभाव से खड़े थे।
र्ण ने अपने प्रिय शिष्य चंड से कहाह्नजब मैं अंतिम मंत्र का उच्चारण करूं
तुम इनका खड्ग से शिरच्छेद कर देना। अनुष्ठान की सारी विधि सम्पन्न
चुकी थी। ज्योंही सुकर्ण ने अंतिम मंत्र का उच्चारण किया चंड ने मुनि
खड्ग से वार करना चाहा। मुनि कायोत्सर्ग में लीन थे। किन्तु महान्
श्चर्य कि खड्ग किसी अदृश्य शक्ति ने छीन लिया। यज्ञकुंड में भयंकर
ां उठा। कालदंड उछलकर यज्ञकुंड में गिर गया। वह जलकर भस्म हो
। सुकर्ण आदि सभी शिष्य मूर्च्छित हो गए। मुनि ने कायोत्सर्ग पूर्ण
या। सबको अचेत देखकर वे बाहर चले गए और अपने चार मुनियों को
थ ले आश्रम से बाहर निकल गए। शाम का समय था, इसलिए मुनि
बा विहार नहीं कर सके। आश्रम की कुछ ही दूरी पर वे एक निकुंज में
नावस्थित हो गए। इधर सुकर्ण कुछ सचेत हुए। उसने अपनी विफलता
कारण मुनियों को ही माना। प्रतिशोध की भावना से सुकर्ण के रोम-रोम
मानो आग लग गई। उसने मालविका से कहाह्नजब तक मैं मुनियों के रक्त
पान न कर लूं तब तक मैं चैन से नहीं बैठ सकता। चारों ओर दूत
यों की खोज में निकल गए। किन्तु सबको निराशा ही हाथ लगी। अन्त
मालविका मुनियों की खोज में निकली। उसने जंगल में एक जगह मुनियों
खोज लिया। मुनि कायोत्सर्ग कर रहे थे। मालविका सुदर्शन मुनि की
न्त मुद्रा को देखकर प्रभावित हुई। उसने सोचाह्नकहां तो सुरा और सुन्दरी
पान करने वाला सुकर्ण और कहां शान्तरस का पान करने वाले मुनि
र्शन? कहां मुनियों का तपःतेज और कहां भोगविलास का जीवन? यहां
सुख और शांति है वह मैंने कहीं नहीं देखी। मुनियों ने कायोत्सर्ग पूरा
या। मालविका ने कहाह्नमुने! मैं नहीं चाहती कि पुनः आप सुकर्ण के
ल में फंसें। अच्छा यही है कि आप शीघ्रातिशीघ्र यहां से विहार कर दूर
कल जाएं। सुकर्ण आप लोगों के खून का प्यासा बना हुआ है। वह आप
को मारकर ही सुख की चैन लेगा। संभव है कि वह येन-केन प्रकारेण
बल से आप सबको आश्रम में बुला ले। इन सबको देखते हुए यहां से
ायन करना ही निरापद है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मुनियों ने बहिन को आश्वस्त करते हुए कहाह्नधर्म सबका मंगल क
वाला है। धर्म का उपदेश देकर मुनियों ने प्रातःकाल से पूर्व ही वहां से वि
कर दिया। इधर मालविका भी खाली हाथ आश्रम लौट गई। उसने सु
से कहाह्नवे मायावी मुनि हमें भी निद्राधीन कर वहां से पलायन कर ग
इसलिए पकड़ा हुआ शिकार हमारे हाथ से निकल गया। हम भी इस क
में असफल हो गए। यह सुनकर सुकर्ण का क्रोध मानो आकाश को
लगा। उसने मालविका से कहाह्नमालविके! मेरी यह प्यास मुनियों का र
पीकर ही बुझेगी। अब मुझे आकर्षण का प्रयोग करना होगा। किसकी श
है जो उनको यहां आने से रोक दे? बीस योजन की मर्यादा में वे मुंड ज
कहीं भी होंगे उनको मेरा आकर्षण प्रयोग यहां खींच लाएगा। ऐसा कह
सुकर्ण ने अनुष्ठान की तैयारी प्रारम्भ कर दी। सबसे पहले उसने सम्मो
मुद्रा साधी, फिर नग्न होकर एक पैर पर खड़ा हो गया और दूसरे पैर
अपने कन्धे पर रख लिया। दोनों हाथों से ताली बजाकर मंत्रोच्चारण क
लगा। कुछ समय पश्चात् उसने अपने आसन पर स्थित होकर श्वेत भैरव
आह्वान किया। श्वेत भैरव सेवा में उपस्थित हुआ और पूछाह्नक्या आज्ञा
सुकर्ण ने कहाह्नबीस योजन की अवधि में जहां कहीं भी वे मुंड हो उन
मेरे सामने उपस्थित करो। आधा घंटा बीता। इतने में पांच श्वेत वस्त्र उ
सामने आ गिरे। श्वेत भैरव ने कहाह्नइतने में ही संतोष मान लो। वैरतृप्ति
लिए मंत्रों का प्रयोग मत करो। सुकर्ण निराश हो गया। मालविका तो प
से ही मुनियों की शान्त और सौम्य मुद्रा में अनुरक्त थी। जब उसने
वस्त्रों को देखा तो वह और अधिक हर्षोत्फुल्ल हो गई। मालविका ने
वस्त्र ले लिये। अब वह आश्रम-जीवन से छुटकारा पाने की सोचने ल
इसके लिए उसने मंगलघट की आराधना प्रारम्भ की। यह अनुष्ठान एक
ग्यारह दिन का था। कोई भी पुरुष न दीखे, ऐसी साधना उसे एक सौ
दिन तक करनी थी। एक सौ ग्यारहवां दिन उसकी साधना का अंतिम
था। मालविका ने अन्तिम रात्रि में मन ही मन सोचाह्नयदि आज मैंने
बन्धन से मुक्ति नहीं ली तो फिर जीवनभर कभी मुक्त नहीं हो सकूंगी।
मुझे सुकर्ण का भोग्य बनना पड़ेगा। यह सोचकर वह बिना किसी को ब
अंधेरी रात में आश्रम से निकल गई। प्रभात हुआ। चारों ओर मालविका
खोज होने लगी। सुकर्ण ने मालविका की परिचर्या में नियुक्त दे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

चारिकाओं के मस्तक छेद डाले, क्योंकि उन्होंने मालविका की ठीक तरह
निगरानी नहीं रखी थी। तभी तो मालविका को वहां से निकलने का
क्सर मिला। सुकर्ण ने चंड आदि अनेक व्यक्तियों को मालविका की खोज
भेजा। मालविका मुनि सुदर्शन के दर्शनों के लिए अनजाने पथ पर चली
रही थी और इधर चंड आदि शिष्य उसको खोजने के लिए भाग-दौड़
रहे थे। चलते-चलते मालविका कुलपाक सन्निवेश की एक धर्मशाला में
ची। वहां उसे सुदर्शन मुनि के समाचार ज्ञात हो गए थे। उसने धनदत्त
र्थवाह के साथ वहां पहुंचने का निर्णय किया। नियति का योग कि चंड
उसका अनुगमन करता हुआ वहीं आ पहुंचा। उस दिन धनदत्त सेठ के
फिले का पड़ाव अरणिक सन्निवेश से मात्र अठारह कोश की दूरी पर था।
धनदत्त ने निपुणता से मालविका को बचा लिया। अगले दिन वह सार्थ
ल्ली की ओर रवाना हुआ। भाग्यवश एक छोटा सार्थ शंखलपुर जा रहा
। धनदत्त ने मालविका को उस सार्थ के साथ शंखलपुर की ओर भेज
ा। उसी दिन मुनि सुदर्शन भी वहां आने वाले थे। मालविका सार्थ के
थ पैदल ही एक गाड़ी के पीछे-पीछे चल रही थी। घूमता-फिरता चंड भी
ां आ पहुंचा। मालविका को देखते ही उसने पुकाराह्नमालविका!
लविका! चंड, भैरव आदि को देखकर मालविका स्तब्ध रह गई। चंड ने
नायक से कहाह्नयह महिला हमारे आश्रम की है, यह हमें मिल जानी
हिए। संघनायक ने कहाह्नजब तक यह हमारे संरक्षण में हैं तब तक हम
को नहीं दे सकते। यदि यह प्रसन्नतापूर्वक आपके साथ जाना चाहे तो
की मर्जी है। सार्थ का कोई अकल्याण न हो और इस बड़ी शक्ति के
मने सार्थ के प्रहरियों का भी कोई अहित न हो, यह सोचकर मालविका
ना कुछ कहे मार्ग से झाड़ी की ओर दौड़ गई। उसी के साथ चंड
पालिक और भैरव अपने दो साथियों के साथ मालविका के पीछे वन में
ड़े। चंड को यह कल्पना भी नहीं थी कि मालविका ऐसा दुःसाहस करेगी।
गे आगे हिरणी की भांति मालविका दौड़ी जा रही थी तो पीछे शिकारी
तों के भांति चंड आदि व्यक्ति दौड़ रहे थे। कहीं जंगल में मालविका का
रीय कंटीली झाड़ियों में अटक जाता था तो कहीं कांटा चुभने से रक्त
बहने लगती। बहुत दूर पहुंचने पर मालविका एक ठूंठ से टकराई और
वे गिर गई। उसके मस्तिष्क से खून बहने लगा। वह वहीं अचेत हो गई।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

चंड को उसके पास पहुंचने का अवसर मिल गया। चंड ने इधर-उधर देख
कुछ ही दूरी पर उसे एक जलाशय दिखाई दिया। सचेत होने पर व
मालविका भाग न जाए, यह सोचकर चंड ने उसके हाथ-पैर बांध दिए
स्वयं पानी लेने के लिए चला गया।

मालविका के सुदर्शन नाम की अन्तर् की आवाज सारे वन को ची
हुई विस्तृत हो रही थी और उसी समय शंखलपुर की ओर जाते हुए
सुदर्शन लगभग ढाई सौ श्रावकों के साथ वहां से गुजर रहे थे। मुनि सुद
ने वह आवाज सुनी। वे पास में आए। दर्शन दिए और पहचान
मालविका ने अंतिम श्वास मुनि सुदर्शन के चरणों में लिया। श्रावकों ने
संस्कार किया। दूर खड़ा चंड यह देखता रहा।

चंड निराश होकर अपने साथियों के साथ आश्रम में लौट गया। सु
ने आदि से अन्त तक सारे घटनाक्रम को सुना और उसने माना कि
सुदर्शन ही मालविका की मृत्यु का कारण है। अभी तक भी उसकी वैर-तृ
की प्यास नहीं बुझी थी। प्रतिशोध की भावना अन्तःकरण को मथ रही
मालविका की मृत्यु के पश्चात् तो वह एक प्रकार से सदा के लिए निरा
सा हो गया था। उसके शिष्य चाहते थे कि पुनः सुकर्ण सक्रिय बने।
दिन शिष्य ने सुकर्ण को समझाते हुए कहाह्वयदि आपकी निराशा दूर
होगी तो यह आश्रम सदा के लिए शून्य हो जाएगा। आप एक बार
प्रयत्न करें। संभव है सफलता मिल जाए। साथ ही उसने सम्मोहन यज्ञ क
की भी बात कह डाली। साढ़े चार सौ वर्ष पहले सिन्धु के राजा ने उस
आयोजन किया था। उसके बाद वही यज्ञ सुकर्ण के हाथों होने वाला
इसका काल पैंतीस दिन का था। इससे ज्वाला खेचरी सिद्ध होती थी।
के चौतीस दिन पूरे हुए। अन्तिम दिन सात तरुण पुरुषों की बलि
आवश्यक थी। मंत्र चालू था। सात मंत्र बाकी थे। एक एक मंत्र के स
एक-एक पुरुष की बलि दी जा रही थी। अनुष्ठान की विधि सम्पन्न
यज्ञकुंड से सहसा आवाज आईह्वमांग, तू क्या चाहता है। सुकर्ण
कहाह्वआप जानते ही हैं। फिर आवाज आईह्वज्वाला खेचरी उपस्थित हो
तू चाहेगा तो यह तेरे शत्रुओं को यहां लाकर भस्म कर देगी, नहीं तो वे
भी होंगे वहीं भस्म कर देगी। परन्तु यदि वे ध्यानस्थ होंगे तो भस्म
किया जा सकेगा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ज्वाला खेचरी आई। सुकर्ण ने आज्ञा दी। ज्वाला खेचरी वहां से
ना हुई। उस समय मुनि सुदर्शन वहां से पचीस योजन की दूरी पर थे।
रास्ते में विहार कर रहे थे। एक वृद्ध मुनि थोड़े आगे थे। अचानक उनके
जलने लगे और देखते-देखते जलकर भस्म हो गए। मुनि सुदर्शन तत्काल
गए कि अवश्य ही कोई उपसर्ग आया है। उन्होंने सभी मुनियों को
काल कायोत्सर्ग में स्थित रहने को कहा। मुनि ध्यान में स्थित हो गए।
ाला खेचरी ने उनको जलाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वह अपने
त्न में असफल रही। हार कर वह सुकर्ण के पास गई। अदृश्य होकर उसने
ाह्वऐसा प्रयोग संतों पर मत करना। मैं उनके अभेद्य कवच को नहीं भेद
की। अब मुझे स्वयं जलकर मरना होगा। यह कहकर उसने सुकर्ण, चंड
दि शिष्यों के पैर जला डाले और स्वयं जलकर भस्म हो गई।

३७. इच्छाशक्ति का चमत्कार

पौरवी मुनि सुदर्शन की संसारपक्षीया बहिन थी। वह मंदारनाथ के
श्रम में पली-पुसी और बड़ी हुई। वत्स देश के सेनापति काकमुख के साथ
का पाणिग्रहण हुआ। काकमुख की पराङ्मुखता ने उसका जीवन मोड़
ा। वह निर्लिप्त रहती हुई घर में ही साधना करने लगी। अन्त में वह
क्षित होकर नेपाल चली गई। वहां वह आठ साध्वियों के साथ अनशन
ने की तैयारी कर रही थी। मंदारनाथ को ज्ञात हुआ कि वह केशीकुमार
अनशन ग्रहण करने वाली है। वे उससे मिलना चाहते थे, परन्तु नेपाल
पहुंचने में पन्द्रह दिन लगते थे। मंदारनाथ ने इच्छाशक्ति से वहां पहुंचने
निर्णय किया। पिच्यासी शिष्य उनके साथ जाने के लिए तैयार हुए।

मंदारनाथ मृगचर्म बिछाकर बैठ गए। उन्होंने अपने शिष्यों से
ाह्वसभी मन ही मन नेपाल जाने का संकल्प करें। सब समाधिस्थ हो गए।
के मन में नेपाल जाने की इच्छा प्रबल हुई। सबने नेत्र बन्द कर प्रत्याहार
या। एक प्रहर तक सब योगमुद्रा में बैठे रहे। बाद में मंदारनाथ ने
छाशक्ति को आज्ञा दी कि वह उनको नेपाल तक पहुंचा दे। सबने वैसा
किया। कुछ देर बाद जब मंदारनाथ ने आंखें खोलीं तो वे अपने तयालीस
ष्यों के साथ नेपाल पहुंच चुके थे। बयालीस शिष्य वहीं रह गए। क्योंकि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उनकी संकल्पशक्ति इतनी बलवती नहीं थी। मन्दारनाथ तीस कोश चल
पौरवी के पास पहुंचे। अपनी पालित पुत्री को देखकर उनके नेत्र प्रफुल्लि
हो उठे। उन्होंने पुत्री से अनशन के विषय में जानकारी प्राप्त की। त्याग
इस कठोर मार्ग को देखकर उन्होंने कहाह्नधन्य है तुम्हारी साधना! धन्य
तुम्हारा दुष्कर तप! वास्तव में तुम महान भ्राता की महान् बहिन हो। पौ
ने सात साध्वियों सहित अनशन किया और वह पन्द्रह दिनों में इस नश
शरीर से मुक्त हो गई।

३८. कर्ण की उदारता

श्रीकृष्ण प्रायः कर्ण के दान की प्रशंसा करते रहते थे। जब वीर अ
उस प्रशंसा को सुनते तो वह उनके लिए असह्य हो जाती। एक दिन अव
देखकर अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहाह्नक्या कर्ण ही दानी है, मैं दानी नहीं
श्रीकृष्णजी ने उनकी बात को यह कहकर टाल दिया कि समय आने
परीक्षा हो जाएगी। कुछ दिन बीते। एक ब्राह्मण को अपने पिता की अंत्ये
के लिए पचास मन चंदन की आवश्यकता हुई। वह ब्राह्मण अर्जुन के प
गया और चन्दन देने का निवेदन किया। अर्जुन ने चन्दन जुटाने के लि
अपने कई आदमियों को इधर-उधर भेजा, पर सूखा चन्दन नहीं मिला।
ब्राह्मण निराश होकर दानी कर्ण के पास आया और पिता के दाह-संस्
के लिए चन्दन की मांग की। कर्ण ने भी अपने आदमियों को भेजा।
भी कहीं से सूखा चन्दन प्राप्त नहीं हुआ। तब कर्ण ने अपने महल में च
की जितनी भी वस्तुएं रखी थीं वे सब उस ब्राह्मण को दे दी। दाह-संस्
के लिए वे वस्तुएं भी अपर्याप्त थी। उनका वजन लगभग बीस मन मात्र
तीस मन चन्दन की और जरूरत थी। फिर कर्ण ने कर्मचारियों से पूछाह्न
इतना चन्दन और कहीं से मिल सकता है? तब उन्होंने कहाह्नआपका
महल चन्दन के बड़े-बड़े शहतीरों पर टिका हुआ है। उनको कैसे निका
जाए? तत्काल कर्ण ने कहाह्नमहल को गिरा दो। कर्ण की आज्ञा से म
को गिरा दिया गया। उसमें से जो चन्दन निकला उससे ब्राह्मण की मांग
हो गई।

श्रीकृष्ण और अर्जुन घूमने के लिए श्मशान की ओर जा रहे थे। म

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वही ब्राह्मण मिला। अर्जुन ने पूछ लियाह्नक्या चन्दन मिल गया? हां, राज! किसने दियाह्नमहादानी कर्ण ने। यह सुनते ही कृष्ण की बात अर्जुन समझ में आ गई।

३९. सन्त बेला

उड़ीसा प्रान्त में दो मित्र रहते थे। घनिष्ठ सम्बन्ध और घनिष्ठ ता। जब तक दोनों दिन में परस्पर नहीं मिल लेते तब तक उनको चैन ं पड़ती थी। एक बार वे दोनों व्यापार के लिए मुंबई गए। हीरों का पार किया। एक लाख रुपए कमाए। बराबर पांती में प्रत्येक के पचास-ास हजार रुपए आने वाले थे। एक मित्र के मन में लोभ जाग गया। उसने ाह्नघर जाकर दो पांती हो जाएगी और मेरे पल्ले पचास हजार रुपए ही एंगे। अच्छा हो कि मैं अपने मित्र को यहीं ठिकाने लगा दूं। जब पाप में आता है तब वह अनर्थ से अनर्थ काम भी करने को तैयार हो जाता पैसे के सामने घनिष्ठ मित्र भी दुश्मन बन गया। वहां पैसा प्रधान हो और व्यक्ति गौण। उसने मन ही मन मित्र को मारने की योजना बनाई। योजनापूर्वक मित्र को एक होटल में ले गया। वहीं रात बितानी थी। रात समय। उसने मित्र से कहाह्नआप चाहें तो मैं आपके लिए दूध ले आऊं। दूध पीना नहीं चाहता था। किन्तु वह मित्र के आग्रह को नहीं टाल ा। वह दूध के दो सिकोरे ले लाया। जो दूध स्वयं को पीना था उस कोरे को उसने अलग से रख दिया और जो दूध मित्र को पिलाना था, में जहर घोल दिया। दोनों साथ बैठकर दूध पीने लगे। थोड़ी ही देर में पर जहर का असर दिखाई देने लगा। कुछ ही घंटों में मित्र मर गया। उस मित्र के लिए मुश्किल हो गई कि लाश को ठिकाने कैसे लगाया ए? उसने अंधेरे का लाभ उठाकर एक टैक्सी वाले को अपने विश्वास में या और दुगुने-चौगुने रुपयों का लोभ देकर उस लाश को होटल से कलवा कर टैक्सी में रखवा दिया। योजनापूर्वक वह टैक्सी ड्राइवर को द्र की ओर ले गया और लाश समुद्र में फेंकवा दी। अपनी योजना को ल जानकर वह घर लौटा। आते ही वह अपने मित्र के घर गया। उसके बाप के सामने मनगढंत बातें बनाकर उसने मित्र की बात को वहीं दफना ा और जाते जाते दस हजार देकर कहाह्नतुम्हारे पुत्र ने मुझे यह राशि सौंपी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

थी, इसलिए मैं यह राशि लौटा रहा हूं। पुत्र के शोक को परिवारवालों
नियति मानकर स्वीकार कर लिया। उन्हें उस मित्र पर किसी भी प्रकार
अविश्वास नहीं हुआ। हो भी कैसे? क्योंकि वे दोनों बचपन के साथी

दूसरा मित्र अपने घर आ गया। सुखपूर्वक विलासपूर्वक दिन निक
लगे। गांव में ही व्यापार जमा लिया। दो वर्ष बाद उसके घर एक पुत्र
ने जन्म लिया। लड़का अत्यन्त रूपवान था। लड़का बड़ा हुआ। शिक्षा
लिए उसने अपने पुत्र को परदेश भेजा। पढ़ लिखकर वह विद्वान् हो ग
उसकी शादी की गई। पिता ने शादी में काफी खर्चा किया। बहु घर
गई। एक दिन अचानक बेटे की तबीयत बिगड़ गई। काफी उपचार चला
बीमारी दिनोंदिन बढ़ती गई। बहुत ईलाज कराए, किन्तु पुत्र ठीक नहीं
सका। एक दिन पुत्र के पास पिता बैठा था। आकस्मिक ढंग से पुत्र ने पि
से कहाह्नतुम मुझे पहचानते हो या नहीं। मैं तुम्हारा वही मित्र का जीव
जिसको तुमने मारा था। मैंने अपने सारे रुपयों का भुगतान कर लिया है।
केवल पांच सौ रुपए बाकी हैं। उनको तुम मेरी अन्त्येष्टि में खर्च कर दे
यह कहते ही लड़का इस संसार से विदा हो गया। पिता को एक धक
लगा। अपने द्वारा कृत जघन्य अपराध से उसे आत्मग्लानि हुई। मन
वैराग्य जाग गया। वह संन्यासी बना, साधना करने लगा। आगे जाकर
'सन्त बेला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

४०. सफलता के सूत्र

एक व्यक्ति के मन में जिज्ञासा हुई कि सफलता के उपाय क्या
वह इसकी खोज में निकला। एक व्यक्ति से पूछा। उसने कहाह्नसफलता
उपाय हैह्नबल। दूसरे ने कहाह्नसंकल्प। तीसरे ने कहाह्नबुद्धि। उसने परी
करनी चाही। वह एक टेढ़ी कील और भारी हथौड़ा लेकर चला। एक ब
खेल रहा था। उससे कहाह्नबच्चे! इस कील को सीधी कर दो। यह
हथौड़ा। बच्चे ने सुना और हथौड़ा उठाने लगा। वह भारी था। उसे उठा
सका। उसमें संकल्प था, पर बल नहीं था। आगे चला। एक हट्टे-
व्यक्ति से कील सीधी करने के लिए कहा। उसने सुनी-अनसुनी कर
उसमें बल था, पर संकल्प नहीं था। आगे चला। तीसरे व्यक्ति से वही प्र
किया। उसने कील ली। उसे मिट्टी पर रखी। हथौड़ा उठाया और कील

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

र किया। कील मिट्टी में धंस गई। सारी रेत उसके मुंह पर छा गई। उसमें न था, संकल्प था पर बुद्धि नहीं थी। आगे चला। चौथा व्यक्ति मिला। ने कील को पत्थर पर रखा और हथौड़े से प्रहार किया, कील सीधी हो । उसमें बल, संकल्प और बुद्धि तीनों थे।

उसने जान लिया कि सफलता का उपाय हैह्नबल, संकल्प और द्धिह्नतीनों की समन्वित आराधना।

४१. एका

बोधिधर्म महात्मा बुद्ध के शासन में दीक्षित थे। वे ईसा की छठी ाब्दी में दक्षिण भारत से सामुद्रिक यात्रा कर चीन पहुंचे। वहां उन्होंने ा कि बौद्ध धर्म का प्रचार करने वाले हजारों संन्यासी विभिन्न मठों में रह हैं। वे सब महात्मा बुद्ध की वाणी के आधार पर अपना जीवन यापन ते हैं और शास्त्रों के उलट-फेर में समय व्यतीत कर रहे हैं। बोधिधर्म को कुछ अटपटा-सा लगा और यह महसूस हुआ कि चीन का बौद्धिक वर्ग द्ध धर्म की यथार्थता को पकड़ने में असफल रहा है, क्योंकि धर्म का न्तरण यथार्थ भाषणों से नहीं, आचरण से होता है।

बोधिधर्म एक पहाड़ की गुफा में गए और सामने वाली पहाड़ी के खर को देखते हुए ध्यानमग्न हो गए। वे पद्मासन में बैठे-बैठे ध्यान करते । कोई आता तो भी वे मौन ही रहते। वहां की जनता उन्हें 'दीवार देखने ला ब्राह्मण' (Wall-ganing Brahmin) कहकर पुकारने लगी।

लोयाना नगर में एका नाम का प्रसिद्ध विद्वान् रहता था। वह 'टोइज्म' र कन्फ्यूशियसिज्म' का विद्वान् था। एक बार वह बोधिधर्म से धर्मचर्चा ने पर्वत पर चढ़ा। वह बोधिधर्म के सामने आया। खड़ा रहा। किन्तु धिधर्म मौन रहे। वह चला गया।

तीन वर्ष बाद 'एका' पुनः पहाड़ पर चढ़ा। बोधिधर्म को ध्यान करते नौ वर्ष बीत चुके थे। अब भी वे मौन रहे। 'एका' वहां खड़ा रहा। कर शीत पड़ रही थी। रातभर वह खड़ा रहा। बर्फ पड़ी। वह कमर तक क में गढ़ गया। अब भी वह शान्त और स्थिर खड़ा था।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बोधिधर्म ने आंख बोली। सामने निर्जीव से खड़े एक व्यक्ति
देखकर पूछाह्नतुम क्या चाहते हो? एका ने कहाह्नकृपा कर आप अपने
का रहस्य मुझे बताएं। बोधिधर्म ने कहाह्नमित्र! आज तक हजारों व्यक्ति
ने संबोधि प्राप्त करने के लिए अपने जीवन को न्यौछावर किया है। प
बहुत कम व्यक्ति उसे पा सके हैं। तुम संबोधि प्राप्त करना चाहते ह
इतना धैर्य है तुम्हारे में!

एका ने यह सुना। उसका सोया पराक्रम जाग उठा। उसने अपना भ
छूरा निकाला और अपना दायां हाथ बोधिधर्म को देते हुए कहाह्नमेरे संक
का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। संबोधि प्राप्त करने की सही भूख मेरे में जाग
है।

बोधिधर्म ने 'एका' को देखा और देखा कि एका का धैर्य घनी
होकर सामने खड़ा है। उन्होंने एका को मार्ग दिखाया। एका लक्ष्य तक प
गया।

४२. देर है, अन्धेर नहीं

एक बुढ़िया थी। उसके एक पुत्र था। घर में अत्यन्त निर्धनता
बेटा बड़ा हुआ। बुढ़िया उसे पढ़ाना चाहती थी, पर कोई उसे स्कूल में भ
नहीं करता था। वह अनेक स्कूलों में गई। सर्वत्र पैसे की मांग थी।
व्यक्ति ने उसे पढ़ाने की हां भर ली। लड़का बुद्धिमान् था। थोड़े ही स
में वह काफी पढ़ गया। उसने मां से कहाह्नअब मैं व्यापार करूंगा। मां
उसे एक रूपया दिया। उसने भूंगड़े खरीदे और उसे बाजार में बेचने ल
होते होते वह लखपति हो गया। उसका विवाह हुआ, पर सन्तान नहीं
देवी-देवता भी मनाए, पर सब व्यर्थ। एक दिन एक योगी आया। उ
पुत्रवधू से कहाह्नयदि तू किसी के छोटे बच्चे को मारकर उसके लहू से स्
करे तो तेरे सन्तान हो सकती है। पुत्रवधू ने उसे नकारते हुए कहाह्नमैं अ
गोद को भरने के लिए दूसरे की गोद सूनी नहीं कर सकती। कुछ वर्षों
बाद मन में पाप जाग गया। पड़ोसी का बच्चा खेलता-खेलता उसके
आया। उसने उसे मार कर स्नान किया। भाग्ययोग से वह गर्भवती हुई। उ
कुछ समय बाद देवकुमार-तुल्य बच्चे को जन्म दिया। सेठ ने सोचाह्नअब

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मेरी पत्नी ने पड़ोसी के बच्चे को मारा है। उसने बात गुप्त रखी। धन
ने लगा। बेटे, पोते-परपोते हो गए। सेठ ने सोचाह्नईश्वर के घर में अंधेर
अन्यथा मेरे घर में यह पाप कैसे फलता? एक दिन अन्तिम पोते का
वाह था। सारे लोग घर में थे। अचानक मकान में आग लग गई। सारे
कर राख हो गए। बचाने वाला कोई नहीं मिला। केवल एक सेठ ही
ा। वह पागल होकर बाहर घूम रहा था और लोगों को बता रहा
ह्नभगवान् के घर में देर है, अन्धेर नहीं।

४३. युद्ध में पीछे नहीं

एक देश का राजा कार्यवश कहीं दूर चला गया। पीछे से दुश्मन ने
क्रमण कर दिया। रानी चिन्तित हुई। सभी अमात्य आदि परामर्श करने के
ए एकत्रित हुए कि अब क्या किया जाए? रानी ने कहाह्नमैं सेना
ालूंगी। एक जैन सिपाही ने कहाह्नआप मुझे सेना का भार सौंपिए। मैं
मन को भगा दूंगा। उसके कहने से वह काम उसे सौंप दिया गया। रणक्षेत्र
वह जैन सिपाही हाथी के हौदे पर बैठा है। उस दिन पाक्षिक दिन था।
श्रावक के लिए प्रतिक्रमण करना अनिवार्य होता है। सायंकाल हुआ और
सिपाही प्रतिक्रमण करने लगाह्न'जे मे जीवा विराहिया.....। किसी ने रानी
पास आकर शिकायत की वह तुम्हारा जैन सिपाही तो प्रतिक्रमण कर रहा
वह शुत्रओं से क्या लड़ेगा? रानी को विस्मय हुआ। दूसरे दिन वह जैन
ाही वीरता से लड़ा। शत्रु सेना पलायन कर गई। जैन श्रावक भी अवसर
ने पर अपने पथ से च्युत नहीं होते।

४४. ईर्ष्या का दुष्परिणाम

सीतापुर एक सुरम्य नगर था। वहां एक सेठ रहता था। उसके सात पुत्र
छोटे पुत्र का नाम गुणसुन्दर था। उसकी पत्नी का नाम गुणसुन्दरी था।
वार में कुल सोलह व्यक्ति थे। गुणसुन्दरी काम नहीं करती थी, इसलिए
के प्रति सबके मन में ईर्ष्या थी। उसका तिरस्कार होने लगा। रोटी भी पूरी
ीब नहीं होती थी। एक दिन उसने अपने पति गुणसुन्दर से यह बात कही।
सुन्दर इस बात से दुःखी होकर घर से निकल गया। भाग्य का सितारा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

चमका। वह राजा बन गया। उसके घर से निकलने के बाद सारा परि
अस्त-व्यस्त हो गया। पास में जो धन था, वह भी खूट गया। मां,
और भाई घर-घर के भिखारी हो गए। घूमते-घूमते वे उसी नगर में प
गए, जहां राजा गुणसुन्दर था। बाजार की सड़कों पर गुणसुन्दर ने अपने
बाप और भाइयों को देखा। उसका अंतःकरण दयार्द्र हो गया। उसने अ
कर्मचारियों को नीचे भेजकर उनको राजमहल में बुलवा लिया। परस्पर सब
सहज मिलन हो गया। सबकी वहीं सुन्दर व्यवस्था हो गई।
प्रसन्नतापूर्वक राजमहल में रहने लगे।

४५. आदत की लाचारी

कुछ मच्छीमार घर लौट रहे थे। भयंकर वर्षा थी। रास्ते में एक मा
के घर ठहरे। वहां फूलों के ढेर थे। चारों ओर सुगन्ध फूट रही
मच्छीमार सोना चाहते थे, पर उन्हें नींद नहीं आई। उन्होंने माली
कहाह्नइस दुर्गन्ध से हमारी नींद उचट रही है। माली ने कहाह्नयदि ऐसा
तो एक काम करो। अपने-अपने नाक के पास मच्छलियों की टोकरी रख
सो जाओ। उन्होंने वैसा ही किया। नींद आ गई।

४६. मंत्र भी अधिकारी पाकर ही काम करता है

राजा ने मंत्री से कहाह्नहमें भी मंत्र सिखा दो। मंत्री ने कहाह्नमैं इस
अधिकारी नहीं हूं। राजा को क्रोध आ गया। उसने पैसे देकर ब्राह्मण से
लिखाया और मंत्री से पूछाह्नक्या यह मंत्र ठीक है? मंत्री ने कहाह्नमंत्र
वही है, पर गुण और स्वभाव वह नहीं है। राजा ने कहाह्नकैसे? उ
उदाहरण देते हुए एक किस्सा सुनायाह्नएक बार किसी मंत्री ने राजमहल
एक नौकर से कहाह्नजाओ, राजा को दो थप्पड़ मार आओ। नौकर
गया। जब राजा को मंत्री की इस हरकत का पता चला तो उसे गुस्सा
गया। उसने भी उसी नौकर से कहाह्नजाओ, मंत्री के दो थप्पड़ मार आ
उसने वैसा ही किया। मंत्री ने कहाह्नराजन्! आज्ञा दोनों की एक जैसी
पर दोनों का असर अलग-अलग था। इसी प्रकार मंत्र भी अधिकारी पा
ही कार्य करता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४७. गरीब कौन ?

गुरु ने एक शिष्य को वस्त्र देते हुए कहाह्नइसे गरीब को दे आओ। ने वह वस्त्र किसी राजा को दे दिया, जो दूसरे राष्ट्र पर चढ़ाई कर रहा । राजा कुपित हो गया। उसने इसे अपना अपमान समझा। वह गुरु के स आया। उसने आंखें लाल करते हुए कहाह्नआप भी कैसे गुरु हो, जो ा को गरीब समझ रहे हो। गुरु ने उसे समझाते हुए कहाह्नतुम्हारे पास ना ऐश्वर्य है, इतना बड़ा राज्य है, फिर भी तुम चढ़ाई कर रहे हो। तुम ब हो तभी तो यह काम कर रहे हो, अन्यथा क्यों करते? राजा समझ ा और गुरु चरणों में प्रणत हो गया। इसलिए कवि ने कहाह्न

मनसि च परितुष्टे कोर्थवान् को दरिद्रः।
स हि भवति दरिद्रः यस्य तृष्णा विशाला।।

४८. शांति कैसे ?

एक धार्मिक व्यक्ति ने संत से कहाह्नशांति कैसे मिलती है? सन्त ने ाह्नरहने दो शांति को। सात दिन बाद तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। सेठ को यु का डर सताने लगा। उसने सब वैर-विरोध मिटा दिए। क्षमायाचना । मन शान्त हो गया। संत आए और पूछाह्नकैसे बीते सात दिन? सेठ कहा शांति से। सन्त ने कहाह्न

दो बात न भूलिए जो चाहो कल्याण।
तुलसी इक तो मौत को, दूजै श्रीभगवान्।।

४९. चौधरी कौन हो सकता है ?

एक चौधरी का कुटुम्ब लम्बा चौड़ा था। चौधरी मर गया। उसके चार ड़के थे। चारों में से चौधरी कौन हो? यह निर्णय लेना था। मां ने ाह्नमामा को बुला लो। पहला लड़का मामा को बुलाने गया। मामा ने ाह्नवर्षाकाल है। हल जुत रहे हैं, तुम हल जोतने में मदद करो। लड़के ने ा ही किया। दूसरा लड़का आया। मामा ने कहाह्ननिदान करना है। तुम मदद करो। दूसरे लड़के ने भी वैसा ही किया। तीसरा लड़का आया। ा ने कहाह्नफसल पक गई है। उसे काटनी है, मदद करो। तीसरे ने भी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मामा के कथनानुसार काम कर दिया। अब चौथे लड़के की बारी थी। भी आया। मामा ने कहाह्नधान घर ले जाना है, मदद करो। उसने धान पहुंचाया। फिर सोचाह्नमामा केवल मुफ्त में ही काम कराना चाहता है। कितने दिन चलेगा। इसे पाठ पढ़ाना चाहिए। एक दिन भानजे ने मामी कहाह्न मामीजी! आज मैं आपको एक रहस्य की बात बताने आया हूं। म ने जानने की उत्सुकता दिखाई। भानजे ने धीरे से कान में कहाह्नमामा जादूगर है। उसका शरीर खारा है। यदि विश्वास न हो तो स्नान कराते स मामा के शरीर को चाट कर देख लेना। दूसरे दिन वह मामा के पास आ भानजे ने कहाह्नमामाजी! यदि आप बुरा न मानो तो मैं आपको एक ज बात बताऊं। मामा ने कहाह्नबोलो, क्या बात है? मेरी मामी बनी ब डाकिन है। आपको स्नान कराते समय यदि वह आपका बदन चाटे तो स लेना कि भानजे ने जो कहा है वह सत्य है। इस प्रकार दोनों ओर स व्याप्त हो गया। जब मामा स्नान करने लगा तो मामी उसके बदन को चा लगी। इस पर मामा ने उसे लकड़ी से पीटा। उस दिन अन्य तीनों भाई आ गए थे। छोटे भानजे ने कहाह्नमामा मामी को बहुत पीटता है। स मामी को पीटते हुए देखा। सब मामा को बुरा-भला कहने लगे और ब में पड़ कर मामी को छुड़वा दिया। जब असलियत का पता चला तब म ने छोटे भानजे को चौधरी बना दिया। चौधरी वही बन सकता है जो स आने पर साम, दाम, भेद, दण्ड का प्रयोग कर सकता है।

५०. श्रुत का महत्त्व

उज्जयिनी नाम की नगरी। यव नाम का राजा। गर्दभ नाम युवराजा। पुत्री का नाम था अडोलिका। दीर्घपृष्ठ राजा का अमात्य अडोलिका अत्यन्त रूपवती थी। गर्दभ उसके रूप पर आसक्त था। उ यह जानकारी मंत्री को दी। मंत्री ने लोकापवाद से बचने के लिए दोनों भूमिगृह में भोग भोगने के लिए कहा। राजा को यह बात ज्ञात हो गई। उ मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह प्रव्रजित हो गया। गर्दभ ने पिता शासनभार को संभाला। पुत्र-स्नेह के कारण राजा का मन पढ़ाई में लगता था। वह बार-बार उज्जयिनी नगरी में आता। एक बार वह अपने न

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

या तो नगर के पास ही एक यव के खेत में विश्राम करने बैठा। इतने में गधा यव खाने के लिए खेत में घुसा। क्षेत्रपाल ने गधे को देखकर कहाह्न

आधावसी-पधावसी, मम वा वि निरिक्खसी।
लक्खियों ने मया भावो जव पत्थेसि गद्दभा।।

विश्राम करने वाले साधु ने यह श्लोक कंठस्थ कर लिया। वह आगे ा। लड़के अडोलिया (गिल्ली अंडल) खेल रहे थे। वह गिल्ली एक ल में गिर गई। एक लड़के ने इधर-उधर देखा। वह नहीं मिली। उसने वाह्नअवश्य ही वह बिल में पड़ी है। उसने कहाह्न

इओ गया इओ गया, मग्गिज्जंती न दीसती।
अहमेयं वियाणामि, अगडे छूढा अडोलिया।।

साधु ने वह श्लोक भी सीख लिया। वह आगे चला। एक कुम्भकार यहां ठहरा।

दीर्घपृष्ठ अमात्य ने राजा को पहचान लिया। उसके मन में बदले की वना जागी। उसने रात्रि में कुम्भकार के घर के पास अनेक आयुध छिपा ए। उसने गर्दभ राजा से प्रतिशोध की भावना से कहाह्नआपके पिताजी य छीनने के लिए आए हैं। आस-पास में आयुध छिपाए हुए हैं। यदि श्वास न तो आप स्वयं देख लें। मंत्री ने राजा को उस स्थान पर ले जाकर छिपे आयुध दिखा डाले। राजा को विश्वास हो गया। इधर कुम्भकार के एक बड़ा चूहा इधर-उधर दौड़ रहा था। कुम्हार ने कहाह्न

मुहुमाला मद्दलया, रत्तिं हिंडणसीलया।
भयं ते नत्थि ममूल दीहपट्ठाओ ते भया।।

साधु ने यह श्लोक भी सीख लिया। इधर गर्दभ राजा अपने पिता मारने की ताक में वहीं छिपा हुआ था। साधु के तीन श्लोक सीखे हुए वह बार-बार उनको याद रखने के लिए पुनरावर्तन कर रहा था। तीनों ोकों को सुनकर राजा गर्दभ ने सोचाह्नओह! मेरे पिता निर्दोष हैं। यह र्घपृष्ठ मुझे ही मारना चाहता है। उसने दीर्घपृष्ठ का सिर काट डाला। भ ने अपने पिताश्री साधु से क्षमा मांगी। साधु ने सोचाह्नऐसे श्लोकों का इतना प्रभाव है तो श्रुत की तो बात ही क्या? अब वह ध्यान से पढ़ने ा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

५१. अज्ञानी की संगत भयंकर होती है

चौधरी के घर विवाह था। लोगों ने कहाह्नएक मुनीम रख लो, जि
हिसाब-किताब ठीक रह सके। बहुत समझाने पर उसने एक मुनीम र
उसने सुन रखा था कि मुनीम चोर होते हैं। उसने मुनीम के लिए एक
मचान बना दिया। जो भी खर्चा होता, वह नीचे खड़े-खड़े बोलता
मुनीम ऊपर बैठ लिख देता। दूसरे दिन चौधरी के मन में सन्देह हुआ।
चुपके से मंच पर चढ़ा। मुनीम खर्चे की जोड़ लगा रहा था। वह जोड़
था, आठ और आठ सोलह, सोलह और नौ पचीस, पचीस के पांच
हाथ में लगे दो। चौधरी ने यह सुना। उसने सोचाह्नपचीस में से दो
इसने ले लिए हैं। उस दिन मुनीम अपने घर से दो रुपए लाया था। तल
ली गई। चौधरी की बात सत्य निकली। उसने मुनीम को पीटा। मुनीम
प्रतिज्ञा की कि मैं भूखा मर जाऊंगा, पर अनपढ़ के यहां नौकरी नहीं करूं
अज्ञान भयंकर है, किन्तु अज्ञानवान् की संगत भी भयंकर होती है।

५२. को रुक्?

चरक ऋषि ने चरक का निर्माण किया। वे शिष्यों को अध्यापन क
थे। उनकी परीक्षा करनी चाही। उन्होंने पक्षी का रूप बनाया और को रु
को रुक्? को रुक्? स्वस्थ कौन? स्वस्थ कौन? स्वस्थ कौन? बो
लगे। एक शिष्य ने कहाह्नच्यवनप्राश लेने वाला स्वस्थ है तो दूसरे
कहाह्नमुक्तापिष्टी का सेवन करने वाला स्वस्थ है, आदि। उन्होंने सोचाह्न
क्या? जो मैंने ग्रंथ लिखा वह तो यदा कदा काम में आने लायक
लोगों ने तो इसे ही सब कुछ मान लिया है। लोग पेट को दवाईखाना
देना चाहते हैं। चरक कुछ आगे गए। एक ब्राह्मण नदी में स्नान कर रहा
वही प्रश्न कियाह्नको रुक्? उसने उत्तर दियाह्नहितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्ह्न
हितकर भोजन करता है, परिमित मात्रा में भोजन करता है और ऋतु
भोजन करता है वह स्वस्थ है। वह वाग्भट्ट था।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

५३. जेल जाने की इच्छा

एक नगर सेठ था। वह दयालु था। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह न में जाए। उसने यह बात मुनीम से कही। पर बिना अपराध के जेल कैसे या जाए? वह अवसर देख रहा था। एक दिन बादशाह की दासी सोने कलश में घी ले जा रही थी। सेठ ने दूर से एक पत्थर फेंका। बर्तन नीचे गया। बादशाह ने उस अपराध के कारण सेठ को जेल भेज दिया। दशाह ने पुनः चिन्तन किया कि सेठ दयालु है। वह किसी का बुरा नहीं ता। अवश्य इसमें कोई रहस्य होना चाहिए। बादशाह ने सेठ से ाह्वतुमने पत्थर क्यों फेंका? सेठ ने कहाह्वघी का बर्तन खुला था। एक ल सर्प को ले जा रही थी। विष की बूंदें बर्तन में गिर जाएंगी तो बादशाह जाएंगे, इस चिन्तन से मैंने पत्थर फेंका था। इसमें मेरा क्या दोष है? दशाह ने उसे मुक्त कर दिया।

५४. राजा कौन हो सकता है?

एक राजा था। वह वृद्ध हो गया। उसने मंत्री को राजा बनाना चाहा। क्षा करनी थी। एक दिन रात को मंत्री से पूछाह्वये सियार क्यों रो रहे हैं? ी ने कहाह्वये भूखे हैं। राजा ने उनके लिए खीर-पूड़ी बनाने की आज्ञा दे मंत्री ने इस बहाने खूब धन इकट्ठा कर लिया। दूसरे दिन पूछाह्वआज ये यार क्यों रो रहे हैं? मंत्री ने कहाह्वभोजन तो मिल गया, परन्तु ठंड से ुर रहे हैं। राजा ने कहाह्वउन्हें कश्मीरी कंबल दे दो। मंत्री ने खूब धन ाया। तीसरे दिन सभा में मंत्री को खड़ा कर राजा ने कहाह्वमैं इनको राजा ने वाला था। परन्तु जो मंत्री सियारों को खीर-पूड़ी खिला सकता है, ल दे सकता है, वह राज्य का भला नहीं कर सकता।

५५. हृदय परिवर्तन

एक व्यापारी जंगल से गुजर रहा था। पास में धन था। साथ में चोरों भय भी था। उसने धन की सुरक्षा के लिए एक झोपड़ी में बैठे एक क्ति को वह धन देकर कहाह्वभाई! जब तक मैं वापस न आऊं तब तक इस अमानत को सुरक्षित रखना। उसके साथ उसके अन्य साथी भी थे।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उन्होंने धन अपने पास ही रखा। रास्ते में चोर मिले। सबको लूट लि
व्यापारी मन ही मन प्रसन्न हुआ कि उसका धन बच गया। जब वह व्याप
पुनः लौटकर उसी झोपड़ी के पास आया तो देखा कि वे सारे चोर
एकत्रित हैं, जिसे वह अपना धन सौंपकर गया था। वह चोरों का सरदार
वह भयभीत हुआ। चोरों के सरदार ने कहाह्नतुम डरो मत। मैंने धन लूटा
है। तुम मुझे धन सौंपकर गए हो। यह लो तुम्हारा धन। चोरों ने यह बर
देखा। उसका हृदय बदल चुका था। उसने सदा के लिए चोरी छोड़

५६. गुरु का महत्त्व

एक पंडितजी गांव में आए। उन्होंने घोषणा की कि जो कोई मेरे
आएगा वह सीधा स्वर्ग जा सकेगा। सारे लोग आए। एक व्यक्ति
आया। पंडितजी उसके घर गए। कारण पूछा। उसने कहाह्नमैं स्वर्ग जाना
चाहता। मैं मेरे गुरु के पास रहना चाहता हूं। न जाने मेरे वे गुरु कहां
यदि मैं स्वर्ग जाऊं और यदि वे वहां न हों तो मेरा जाना निरर्थक हो जाए
तब वह स्वर्ग भी मेरे लिए नरक हो जाएगा। मैं वहीं रहना पसन्द क
जहां मेरे गुरु रहें।

५७. हम खल नहीं है

श्रद्धानन्दजी और दर्शनानन्दजीह्नदोनों आर्य समाज के प्रमुख व्यक्ति
एक बार दोनों में विवाद हो गया। श्रद्धानन्दजी ने दर्शनानन्दजी को पर
में काफी बुरा भला कहा, किन्तु दर्शनानन्दजी किञ्चित् भी विचलित
हुए। वे अंत तक शान्त रहे। श्रद्धानन्दजी अपने स्थान पर आए। अप
गलती का अहसास किया। पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने दर्शनानन्दजी
क्षमायाचना का पत्र लिखा। प्रत्युत्तर में दर्शनानन्दजी ने पत्र का जवाब
सुभाषित लिख कर भेजाह्न

अस्मानवेहि कलमानलमाहतानां, येषां प्रकाण्डमुसलैरवदाततैव
स्नेहं विमुच्य सहसा खलतां प्रयान्ति, ये स्वल्पमर्दनवशान्न वयं तिलास्ते।

इसका भाव थाह्नआप हमें उन चावलों के समान जानो जिन
अवदातता मूसलों के द्वारा कूटे जाने पर भी बनी रहती है। हम वे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ं है जो स्वल्प मर्दन मात्र से अपने स्नेह को छोड़कर सहसा खल बन ते हैं।

५८. शोधप्रवृत्ति कैसे?

विद्यार्थी धन्वन्तरी गुरुकुलवास में गुरु आरोग्य के पास विद्यार्जन कर था। एक बार उसकी पीठ में विषैला व्रण हो गया। वह गुरु के पास ा और गुरु से उसका उपचार पूछा। गुरु ने कहाह्नयदि कहीं से संजीवनी ी मिल सके तो तुम्हारा इलाज हो सकता है। विद्यार्थी ने पूछाह्नउसकी चान क्या है? उस समय गुरु ने उसकी परीक्षा करने के लिए जड़ी की चान नहीं बताई। उसने कहाह्नतुम ही जाओ और उस जड़ी को खोजो। वन्तरी एक वर्ष तक जंगल में घूमा, भिन्न-भिन्न औषधियों का पता ाया, किन्तु संजीवनी को खोजने में असफल रहा। कहीं उसे संजीवनी नहीं ली। आखिर निराश होकर वह गुरु के पास लौट आया। उस समय तक की पीठ का विषैला व्रण अति भयंकर हो चुका था। गुरु ने उसके सिर हाथ रखा और कहाह्नचलो, संजीवनी लेने चलते हैं। आश्रम की कुछ ही पर वे एक पहाड़ी के पास पहुंचें। वहां अनेक प्रकार के पौधे थे। गुरु धन्वन्तरी को संजीवनी का पौधा दिखाते हुए कहाह्नऐसी होती है संजीवनी षध। वे संजीवनी ले आए। धन्वन्तरी ने गुरु से निवेदन करते हुए ाह्नगुरुदेव! आपने व्यर्थ ही मुझे एक वर्ष तक क्यों भटकाया? आप स्वयं इसके जानकार थे। गुरु बोलेह्नधन्वन्तरी! यदि मैं ऐसा नहीं करता तो हारी शोध-प्रवृत्ति कैसे निखरती, हजारों औषधियों का ज्ञान कैसे होता? च्छा हुआ कि तुमने अपने अनुभव से उनका ज्ञान प्राप्त कर लिया।

५९. छोड़ना सीखो

एक चोर संत के पास गया और मोक्ष का उपाय पूछा। संत ने उसके पर छह पत्थर रखे और पहाड़ पर चढ़ने को कहा। वह पत्थर लेकर ने लगा। मार्ग में हांफने लगा। उसने सिर पर से एक पत्थर उतार दिया। छ दूर आगे बढ़ा। फिर हांफने लगा। पुनः एक और पत्थर सिर से नीचे र दिया। चोटी पर पहुंच कर संत ने उसे मोक्ष का उपाय बताते हुए

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कहाह्नतुम्हारे पास क्रोध, लोभ, मोह, मद, माया, वासना आदिह्नये छह पल
हैं। एक-एक कर उनको छोड़ते जाओ। तुम्हें मोक्ष मिल जाएगा।

६०. स्वयं भिखारी क्या देगा?

राजा ने साधु से कहाह्नमैं आपको भेंट देना चाहता हूं। साधु ने कहा
पूर्ण संतुष्ट हूं। वृक्ष फल देते हैं, झरने पानी देते हैं और गुफाएं स्थान देती
फिर मुझे क्या जरूरत है? राजा ने कहाह्नआपको सब कुछ उपलब्ध है, कि
मुझे संतुष्ट करने के लिए कुछ भेंट लें। साधु नगर में गया, राजा के महलों
गया। पग-पग पर राजा के ऐश्वर्य को देखा। राजा एक ओर खड़ा होकर ईश
से प्रार्थना कर रहा थाह्नभगवन्! मुझे धन दें, सन्तान दें, देश दें। साधु ने
सब सुना। वह जाने लगा। राजा ने कहाह्नमहात्मन्! भेंट तो लेते जाइए। स
ने कहाह्नजो स्वयं भीख मांगता है वह भला मुझे क्या दे सकता है?

६१. मछलियां बनीं कमल के फूल

वि.सं. १३७३ में आलमशाह देहली का राजा था। एक दिन उ
राज्य के जैनों से कहाह्नतुम मुसलमान बन जाओ या कोई चमत्कार दिखाओ
दक्षिण कोल्हापुर में दिगम्बर आचार्य विद्यासागरजी थे। श्रावक लोग उ
पास गए। सारी बात सुनाई। छह महीने की अवधि थी। केवल तीन दिन
रहे थे। श्रावकों ने सोचाह्नअब मुसलमान बनने अथवा मरने के सिवाय
उपाय नहीं है। सबके मन में भय व्याप्त था। आचार्य विद्यासागरजी मंत्रों
पारगामी और मन्त्रद्रष्टा थे। वे श्रावकों पर आने वाली विपत्ति को सम
थे। एक दिन जब सब लोग रात्री में सो रहे थे, उन्होंने मंत्र का प्रयोग वि
और उसके प्रभाव से वे रातोंरात दिल्ली पहुंच गए। सबको आश्चर्य हुआ
निश्चित दिन वे बादशाह के दरबार पहुंचे। लोगों ने बादशाह को सूचना
कि आचार्यजी आए हैं। मौलवी ने चमत्कार दिखाने के लिए आचार्यजी
कमंडलु में मछलियां पैदा कर दी और बादशाह से कहाह्नदेखो, जहांपना
ये साधु हैं, अहिंसक हैं और अपने कमंडलु में मछलियां रखते हैं। आचार्य
ने यह बात जान ली। बादशाह ने पूछाह्नक्यों आचार्यजी! कमंडलु
मच्छलियां रखते हो? आचार्य ने कहाह्नयह आपका मौलवी झूठ बोलता

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

में तो कमल के फूल हैं। आचार्य ने तत्काल कमंडलु को उलटा किया र कमल के फूल नीचे गिर गए। वहां के सारे मौलवी स्तब्ध रह गए और दशाह स्वयं उनके चरणों में नत हो गया। चारों ओर जय जयकार होने ा।

६२. पंडिताई सब जगह काम नहीं आती

तीन व्यक्ति किसी के घर भोजन करने गए। तीनों पंडित थे। जीमने लिए बैठ गए और अपनी पंडिताई भोजन में लगाने लगे। उनमें एक को जन में सिवइयां परोसी गई। उनको देखकर उसने कहाह्न**'दीर्घसूत्री नश्यति'**। इसका अर्थ तो था कि जो विलम्ब से काम करने वाला होता वह नष्ट होता है। उसने इसका अर्थ किया कि जिसका आकार लम्बा-बा होता है वह विनाश करती है, ऐसा सोचकर उसने उनको नहीं खाया। रे को मंडक फुलके परोसे गए। उसने कहाह्न**'अतिविस्तारविस्तीर्णं तद् भवेन्न रायुषम्।'** जो अति विस्तार से विस्तृत होता है वह चिरायु नहीं होता। ये नके लम्बे चौड़े हैं। उसने भी उनको नहीं खाया। तीसरे को बाटियां परोसी और उसमें छेद कर घी डाला गया। उनको देखकर उसने ाह्न**'छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।'** छिद्र में बहुत अनर्थ होते हैं, इसलिए उसने भोजन नहीं किया। अपनी पंडिताई के कारण तीनों भूखे रहे।

६३. चार ग्रन्थों का सार

एक बार एक राजा ने चार महापंडितों को अपने दरबार में बुलाया। चार पंडित थेह्नआत्रेय, कपिल, बृहस्पति और पांचाल।

राजा ने चारों पंडितों को निर्देश देते हुए कहाह्नआप लोग एक-एक थ का निर्माण करो। राजा के कथनानुसार वैद्यक शास्त्र, धर्मशास्त्र, तिशास्त्र और कामशास्त्रह्नइन चार ग्रन्थों का निर्माण हो गया। ऋषि आत्रेय वैद्यकशास्त्र, कपिल ने धर्मशास्त्र, बृहस्पति ने नीतिशास्त्र और पांचाल ने मशास्त्र को बनाया। चारों पंडित अपने-अपने ग्रन्थ लेकर राजा के सामने स्थित हुए और ग्रन्थों को प्रस्तुत करते हुए कहाह्नमहाराजन्! जैसा आपने ा था वे ग्रन्थ तैयार हैं। राजा ने ग्रन्थों को देखा। प्रत्येक ग्रन्थ बृहत्काय

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

था और उसमें एक-एक लाख श्लोक थे। राजा ने कहाह्नआप लोगों का
प्रशंसनीय है, किन्तु मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं प्रत्येक ग्रन्थ
आद्योपान्त देख सकूं, पढ सकूं अथवा सुन सकूं। इसलिए तुम चारों ग्र
का सार-संक्षेप ही प्रस्तुत करो। तब चारों पंडितों ने प्रत्येक ग्रन्थ का ए
एक चरण बनाकर श्लोक बनायाह्न

'**जीर्णे भोजनमात्रेयः**'ह्नआत्रेय ने कहाह्नजब पूर्व भोजन पच जाए तब
भोजन करना चाहिए।

'**कपिलः प्राणिनां दया**'ह्नकपिल ने कहाह्नप्राणियों पर दया करनी चाहि

'**बृहस्पतिरविश्वासः**'ह्नबृहस्पति ने कहाह्नसबका विश्वास नहीं क
चाहिए।

'**पांचालः स्त्रीषु मार्दवम्**'ह्नपांचाल ने कहाह्नस्त्रियों के प्रति मृदुता
व्यवहार करना चाहिए।

राजा चारों ग्रन्थों के सार को सुनकर प्रसन्न हुआ और पंडितों
उचित सम्मान देकर विदा कर दिया।

६४. भाई की रिहाई क्यों?

प्राचीन समय में एक बादशाह ने अपने राजमहल पर इन्साफ की जं
लटका रखी थी। कोई भी व्यक्ति उसे खींचकर न्याय की गुहार कर सक
था। एक दिन किसी महिला ने उस जंजीर को खींचा। बादशाह को
लगा कि कोई महिला न्याय मांगने के लिए आई है। बादशाह ने उसे अ
पास बुलाया और पूछाह्नबोलो, तुम्हारी क्या शिकायत है। उसने कहाह्नआ
मेरे बेटे, पति और भाई को कारावास में डाल रखा है। उनकी रिहाई के लि
मैं प्रार्थना करने आई हूं। बादशाह ने कुछ सोचा और बोलाह्नमैं तीनों में
एक को रिहा कर सकता हूं। तू किसको रिहा कराना चाहती है। तू जिस
चाहेगी उसीको मैं रिहा कर दूंगा। महिला ने कहाह्नमैं मेरे भाई को रि
कराना चाहती हूं। बादशाह को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने महिला
पूछाह्नबहिन! तूने पति और बेटे की रिहाई की मांग छोड़कर भाई के रि
की मांग कैसे की? पति तो पत्नी के लिए सर्वस्व होता है, बेटे के प्रति
मां की ममता कम नहीं होती, उस स्थिति में भाई को मांगना कैसे न्यायो

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सकता है? महिला ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहाह्नजहांपनाह! मैं अभी ती हूं। मेरा पुनर्विवाह भी हो सकता है, बेटा भी मुझे मिल सकता है। न्तु भाई मुझे कहां मिलेगा? इसलिए मैंने सोच समझकर आपसे भाई की ा की है। महिला के युक्तिमत् वचनों को सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न ा। उसने महिला के पति, बेटे और भाईह्नतीनों को रिहा कर दिया।

६५. आनन्दघन

एक बार आचार्य आनन्दघनजी बीकानेर में प्रवासित थे। बादशाह का हजादा वहां आया हुआ था। वहां अनेक जैन मुनि विविध उपाश्रयों में रहते रास्ते में जब भी शाहजादा उनको देखता तब वह हंसता ही रहता, केवल ता ही नहीं था, कभी कभी मजाक में कुछ बोल भी देता था। उसके इस वहार से जैन मुनि क्षुब्ध हो गए। एक दिन सब मिलकर आनन्दघनजी के स आए। वस्तुस्थिति से उनको अवगत कराया।

शाहजादा प्रतिदिन नगर के बार घूमने जाता था। एक दिन नन्दघनजी भी उसी दिशा में घूमने निकल गए। उनको देखते ही शाहजादे मजाक उड़ाई। आनन्दघन ने उसे कहाह्नक्या तू बादशाह का बेटा है? यहां ड़ा रह। घोड़ा मानो कीलित हो गया। अनेक प्रयत्न करने पर भी वह टस मस नहीं हुआ। शाहजादे ने घोड़े से उतरने का भरसक प्रयत्न किया, न्तु वह भी उतरने में असफल रहा। चारों ओर बिजली की तरह बात फैल कि किसी ने शाहजादे को स्तम्भित कर दिया है।

राजपरिवार वालों को ज्ञात हुआ कि यह किसी श्वेत वस्त्रधारी महात्मा करिश्मा है। वे सब मिलकर आनन्दघनजी के पास आए। बहुत अनुनय-नय किया। आनन्दघनजी ने उनको उपालम्भ देते हुए कहाह्नवह जैन मुनियों हंसी-मजाक क्यों करता है? सभी ने गलती के लिए क्षमा मांगी। नन्दघनजी कुछ पिघले। तब उन्होंने कहाह्नबादशाह का बेटा चले। जब ों से शाहजादा ने ये शब्द सुने, घोड़ा चलने लगा। शाहजादा स्वयं नन्दघनजी के पास आया और अपनी गलती का अनुभव करते हुए लाह्न'आप तो ओलियां हैं, कसूर मुआफ फरमावे।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गाथा महावीर की

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. वासना-विजय

महाभिनिष्क्रमण से पूर्व महावीर का शरीर गोशीर्ष आदि चन्दनों तथा अन्य सुरभि चूर्णों से, सुगंधित पुष्पों से तथा अन्यान्य द्रव्यों सुवासित किया गया। तदनन्तर उसे सुवासित जल से अभिषिक्त कि गया। भगवान् के शरीर से सुगन्ध की लपटें उठतीं और अपने आसपास वातावरण को सुगन्धित बना देतीं। प्रव्रज्या के साढ़े चार मास तक यह ज्यों की त्यों बनी रही।

क्षत्रिय कुण्डपुर के बाहर ज्ञातखण्ड उद्यान में दीक्षा ग्रहण कर भगव कर्मारग्राम की ओर चल पड़े। गांव के बाहर एक उद्यान में प्रतिमा में स्थि हो गए। शरीर की सुगन्ध से दूर-दूर के प्रदेश महक उठे। पुष्पित वनख को छोड़कर भ्रमर अति दूर से वहां आये। दिव्य गन्ध से आकृष्ट हो भगव के सुकोमल शरीर को मृदु कुसुम समझकर बींधने लगे। कई भ्रमर गुनगुना करते हुए मस्ताई में शरीर से चिपकने लगे और कई भ्रमर मकरन्द को पाकर रुष्ट हो अपने तीखे मुंह से शरीर की चमड़ी को छेदकर खाने ल अपार वेदना हो रही थी, परन्तु **'देहे दुक्खं महाफलं'** के विज्ञान को तत्त्व जानने वाले भगवान् अकम्प और समभाव अवस्था में खड़े थे।

भगवान् भिक्षाचरी के लिए गांव में जाते, तो अजितेन्द्रिय युवक सुग में मूर्च्छित हो भगवान् के पीछे-पीछे फिरते और कहतेह्न'मुने! हमें भी ग द्रव्य दें।' साधनारत भगवान् मौन रहते। तरुणों को यह अखरता। वे भगव को उपसर्ग उत्पन्न करते। उनको समभाव से सहते हुए भगवान् आगे चाते।

शारीरिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर स्त्रियां भगवान् से भोग की प्रार्थन करतीं, अनुनय-विनय करतीं और उनके अवयवों की नैसर्गिक संघटना मोहित हो जातीं। स्थिरदृष्टि, ध्यानमग्न भगवान् मौन रहते। ललनाएं कु हो जातीं और नाना प्रकार से कष्ट देतीं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. वेदना-विजय

अस्थिकग्राम का प्राचीन नाम 'वर्द्धमान' ग्राम था। मोराक सन्निवेश से हार कर भगवान् अस्थिकग्राम में आए। वहां शूलपाणि का मन्दिर था। वान् ने वहां रहने के लिए स्वीकृति मांगी। 'गाम' नामक व्यक्ति नगर का ान था। उसने भगवान् से कहाह्न'मुनिवर्य! इस मन्दिर में कोई रात्रिवास ं कर सकता, क्योंकि शूलपाणि यहां रहने वाले प्राणी को (रात्रि में) मार ा है। आप अन्यत्र स्थान की गवेषणा करें।' भगवान् ने कहाह्न'देवानुप्रिय! मेरे जीवन-मरण की चिन्ता मत करो। मुझे यहां रहने की अनुज्ञा दो।' ने अनुज्ञा दे दी। भगवान् एक कोने में ठहरे और प्रतिमा अंगीकार कर त हो गये। रात्रि की वेला में यक्ष ने भयंकर अट्टहास किया। देवालय के हर एकत्रित लोग अत्यन्त भयाकुल हो गए। वहां उत्पल नामक र्वापत्यीय परिव्राजक रहता था। वह अष्टांग निमित्त का जानकार था। ने अपने ज्ञान से भगवान् को जान लिया। उसे अधृति उत्पन्न हुई, परन्तु वेला में देवायतन में जाना खतरे से खाली नहीं था। वे सब बाहर ही रे। अट्टहास को सुनकर भगवान् अक्षुब्ध रहे। तब यक्ष ने हाथी, पिशाच, का रूप बनाकर उपसर्ग पैदा किए, पर भगवान् अकम्प रहे।

यक्ष का क्रोध बढ़ा। उसने भगवान् के शरीर में मस्तकवेदना, नासा-ना, दंतवेदना, कर्णवेदना, अक्षिवेदना, नखवेदना, पृष्टिवेदना आदि सात णान्तिक वेदनाएं उत्पन्न कीं।

ये वेदनाएं इतनी तीव्र थीं कि साधारण मनुष्य तो एक-एक वेदना से मृत्यु को प्राप्त हो जाए। भगवान् उत्कृष्ट धृति में स्थिर थे। इस प्रकार प्रहर तक भगवान् को अत्यन्त कठोर उपसर्ग सहने पड़े। चौथे प्रहर में मुहूर्त्त मात्र नींद आयी।

३. दस स्वप्न

अस्थिकग्राम में शूलपाणि यक्ष ने भयंकर उपसर्ग उत्पन्न किये। णान्तिक वेदना हुई, पर भगवान् महावीर मेरूपर्वत की भांति अकम्प रहे। र रात्रि में एक मुहूर्त्त नींद ली। उसमें दस स्वप्न देखेह्न

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. ताल-पिशाच को मारना।

२. एक श्वेत पुंस्कोकिल देखना।

३. रंग-बिरंगी पुंस्कोकिल।

४. सुगन्धित पुष्पों की दो मालाएं।

५. श्वेत गायों का व्रज।

६. कमलों से सुशोभित तालाब।

७. भुजाओं से समुद्र को तैरना।

८. उदित होते हुए सूर्य को देखना।

९. अपनी आंतों से मानुषोत्तर पर्वत को वेष्टित करना।

१०. मन्दर पर्वत पर चढ़ना।

रात बीती। सूर्योदय हुआ। उत्पल, इन्द्रशर्मा आदि लोग देवायतन आये। भगवान् को प्रसन्नवदन देख, शूलपाणि के पराजित होने की बात उ समझ में आई। वे भगवान् के पैरों में गिरे और उनकी स्तवना करने ल उत्पल अष्टांग निमित्त का जानकार था। उसने भगवान् से कहाह्नभंते! आ अपर रात्रि में जो दस स्वप्न देखे थे, उनका फल मैं आपके सामने प्र करता हूं।

१. आपने ताल-पिशाच को माराह्नइसका अर्थ है आप शीघ्र मोहकर्म का नाश करेंगे।

२. आपने श्वेत पुंस्कोकिल देखीह्नइस अर्थ है आप शुक्लध्यान लीन रहेंगे।

३. आपने रंग-बिरंगी पुंस्कोकिल देखीह्नइसका अर्थ है आप अनेक दर्शन का प्रतिपादन करेंगे।

४. आपने श्वेत गोवर्ग को अपनी उपासना करते देखाह्नइसका अर्थ आप तीर्थ चतुष्टय की स्थापना करेंगे।

५. आपने कमलयुक्त तालाब देखाह्नइसका अर्थ है चतुर्विध आपकी उपासना करेंगे।

६. आपने भुजाओं से सागर को पार कियाह्नइसका अर्थ है आप सं से मुक्त हो जाएंगे।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. सूर्यदर्शन का फल है कि आपको शीघ्र ही केवलज्ञान की प्राप्ति गी।

८. आंतों से मानुषोत्तर पर्वत को वेष्टित कियाह्नइसका अर्थ है आपकी ःकीर्त्ति सर्वत्र फैलेगी।

९. आप मन्दर पर्वत पर चढ़ेह्नइसका अर्थ है आप देव, मनुष्य, असुर दि की परिषद् में धर्म की प्ररूपणा करेंगे।

उत्पल ने कहाह्नभगवन्! आपने जो माला-युग्म देखा था उसका अर्थ नहीं जानता। आप कृपा कर बताएं।

भगवान् ने कहाह्नइसका अर्थ है कि मैं द्विविध धर्मह्नसागारिक और ागारिक धर्म की प्ररूपणा करूंगा। उत्पल ने भगवान् के चरणों में मस्तक काया और मन ही मन भगवान् की महत्ता, तितिक्षा और धृति की प्रशंसा ता हुआ घर चला गया।

४. पांच अभिग्रह

भगवान् विहार करते-करते कोल्लाक सन्निवेश से मोराक सन्निवेश में । वहां 'दुइज्जंत' नामक तापस का आश्रम था। उनके कुलपति भगवान् के ा के मित्र थे। उन्होंने भगवान् का स्वागत किया और प्रथम वर्षावास ीं व्यतीत करने के लिए प्रार्थना की। आठ ऋतुबद्ध महीनों तक ग्रामानुग्राम हार करते हुए भगवान् चतुर्मास के लिए पुनः वहां आए। एक 'उटज' में रे। उस वर्ष वहां अकाल पड़ा। घास के अभाव में आश्रम की गायें उटज पुराने घास को खाने लगीं। तापस गायों का निग्रह करते, परन्तु भगवान् छ नहीं करते। तापसों को यह अखरा। वे कुलपति के पास गए और सारा ान्त कह सुनाया। कुलपति भगवान् के पास आए और बोलेह्न'कुमारवर्य! प जानते ही हैं कि पक्षी भी अपने-अपने घोसलों की रक्षा करते हैं। पको भी अपने निवास-स्थान की रक्षा करनी चाहिए।' भगवान् ने सुना। ां रहते उन्हें पन्द्रह दिन हो गए थे। 'यह अप्रीतिकर स्थान है'ह्नऐसा नकर वहां से चतुर्मास के मध्य में ही अन्यत्र चले गए। भगवान् ने पांच भिग्रह किएह्न

१. आज से मैं अप्रीतिकर स्थान में नहीं रहूंगा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२. आज से मैं व्युत्सृष्टह्नत्यक्त देह होकर विहरण करूंगा।

३. आज से मैं मौन रहूंगा।

४. आज से मैं अपने हाथों को ही पात्र बनाकर भोजन करूंगा।

५. आज से मैं किसी भी गृहस्थ को वन्दन नहीं करूंगा और न उ
सत्कार में खड़ा ही होऊंगा।

५. नन्द-उपनन्द

भगवान् सुवर्णखल से 'बंभणगाम' नगर में आए। गोशाला साथ
था। वहां नन्द तथा उपनन्द दो भाई रहते थे। उस ग्राम के दो पाड़े (भा
थे। एक भाग नन्द के अधीन था, दूसरा उपनन्द के। भगवान् महावीर
के पाड़े में नन्द के घर गए। नन्द ने भगवान् को आहार आदि से प्रतिला
किया। गोशाला उपनन्द के पाड़े में उपनन्द के घर गया और भिक्षा
याचना की। भिक्षा तैयार नहीं थी। तब उपनन्द ने बासी चावल देने चा
गोशाला ने उन्हें लेने से इनकार कर दिया। उपनन्द को यह उचित नहीं लग
उसने अपनी दासी से कहाह्न'जा, तू इन चावलों को उसी भिक्षुक के उ
डाल दे।' दासी ने वैसा ही किया। इस व्यवहार से गोशाला कुपित हो ग
आंखें लाल करता हुआ वह बोलाह्न'यदि मेरे धर्माचार्य का कोई तेज
तपस्या का बल है तो इसका घर जलकर भस्म हो जाए।' पास में
वाणव्यन्तर देव का आयतन था। देवता ने यह जाना। उसने सोचा, भग
का तेज अन्यथा न हो। उपनन्द का घर जल गया। घरवालों ने गोशाला
बहुत बुरा-भला कहा, वह भयभीत होता हुआ भगवान् के पास शीघ्र ही
गया।

६. नियति

भगवान् गोशाला के साथ कोल्लाग सन्निवेश से 'सुवर्णखल' की
जा रहे थे। रास्ते में कई ग्वाले 'खीर' बनाने का उपक्रम कर रहे थे। उ
पास गायों का दूध तथा नये तन्दुल थे। गोशाला ने यह देखा। उसने भग
से कहाह्न'भगवन्! आज यहीं भोजन करें।' भगवान् ने कहाह्न'यह खीर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गी। हांडी फट जाएगी और खीर जमीन पर गिर जाएगी।' गोशाला को वान् के वचनों पर विश्वास नहीं हुआ। वह ग्वालों के पास गया और से कहाह्न'तीन काल के ज्ञाता ने कहा है कि खीर की यह हांडी फट एगी। अतः तुम इसकी सुरक्षा के लिए प्रयत्न करो।' ग्वालों ने हांडी को स की खपाचों से बांधकर अग्नि पर चढ़ा दिया और उसमें बहुत सारे वल डाले। कुछ समय बाद अति चावलों से वह हांडी फट गई। खीर नीचे गई। ग्वालों ने कुछ-कुछ आस्वाद लिया। गोशाला को कुछ नहीं मिला। ने सोचाह्नजो होने का होता है वह होकर ही रहता है। उसका नियति पर का दृढ़ विश्वास हो गया।

७. गोशाला

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् महावीर चम्पा नगरी में पधारे। रा वर्षावास यहीं व्यतीत करने का निश्चय कर लिया। भगवान् सदा स्या को प्रधानता देते। इस वर्षावास में दो-दो मास की तपस्या करने का चय किया। तपस्या में ध्यान और ध्यान में उत्कटुक आसन से भगवान् त थे। प्रथम दो मास बीते। पारणा हुआ। दूसरे दो मास की तपस्या पूर्ण । पारणा चम्पा की बाहिरिका में किया। वहां से भगवान् 'कालाय' वेश में पधारे। एक शून्य-गृह में ठहरे। गोशाला साथ में था। भगवान् न्त में जा ध्यान में लीन हो गए। गोशाला द्वार-पथ पर बैठ गया। उसी र का सिंह नामक श्रेष्ठिपुत्र अपनी गोष्ठया दासी के साथ रमण करने वहां या। सर्वप्रथम उसने शून्य-गृह को ध्यान से देखा कि कोई भीतर तो नहीं भगवान् तथा गोशाला उसे नहीं दीखे। गोशाला ने उन्हें क्रीड़ा करते देख या। जब वह रमण कर जाने लगा तब गोशाला ने कहाह्नछी-छी! सिंह को ध आया। उसने गोशाला को खूब पीटा। वह भगवान् के पास गया और हाह्न'भगवन्! लोग मुझे पीटते हैं; आप उसका निषेध नहीं करते।' भगवान् कहाह्न'तू संयम क्यों नहीं रखता? उपयुक्त स्थान को छोड़कर बाहर क्यों ा रहता है?'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

८. धर्म चक्रवर्ती

सुरभिपुर के पास वाली गंगा नदी को पार कर भगवान् 'थूणा सन्निवेश की ओर आगे बढ़े। नदी के तट पर चिकनी मिट्टी में भगवान् के की रेखाएं उत्कीर्ण हुईं। पुष्य नामक सामुद्रिक शास्त्री ने रेखाओं को देख सोचाह्न'यह चक्रवर्ती होगा। एकाकी है। मैं इसकी इस कुमार अवस्था उपासना करूं। आगे चलकर यह सेवा मेरे लिए लाभप्रद होगी।' वह भग के पास गया। भगवान् प्रतिमा में स्थित थे। भगवान् को देखकर उ सोचाह्न'मेरा ज्ञान निरर्थक है। क्या इन रेखाओं से युक्त व्यक्ति अकिं श्रमण हो सकता है? चलो, ऐसी विद्या से मुझे क्या?' इतने में ही देव इन्द्र वहां आए। भगवान् की स्तवना कर पुष्य से कहाह्न'तुम लक्षण वि नहीं जानते। यह महात्मा अपरिमित लक्षण वाला है। इसके आभ्यन्तर ल भिन्न हैं। शास्त्रवाणी कभी झूठी नहीं होती। तुम्हारा यह अनुमान है कि चक्रवर्ती होगा, सही है। यह पुण्यात्मा धर्म-तीर्थ का चक्रवर्ती है। देवेन्द्र नरेन्द्रों से पूजित है।' सामुद्रिक शास्त्री पुष्य को संतोष हुआ। अपने ज्ञान अविकलता पर उसे हर्ष हुआ और वह भगवान् के अतिशयों की मन-ही- प्रशंसा करता हुआ आगे बढ़ गयाा।

९. नौका में महावीर

भगवान् 'सुरभिपुर' ग्राम में पधारे। वहां गंगा नदी को पार करने लिए एक नौका में बैठे। अन्यान्य लोग भी उसमें बैठे। 'सिद्धदत्त' ना नाविक नौका खे रहा था। उस नौका में 'खेमिल' नामक व्यक्ति श शास्त्र का पारंगत विद्वान् भी था। नौका चली।

खेमिल ने कहाह्न'शकुन के अनुसार नाव में बैठे हुए हम सब व्यक्ति की मृत्यु होगी। किन्तु हमारे मध्य में बैठे हुए इस महान् ऋषि के प्रभाव हम जीवित रह सकेंगे।' नौका कुछ आगे बढ़ी। इधर देव नागकुमार के सुन्द्रष्टा ने भगवान् को नौका में बैठे हुए देखा। पूर्वजन्म का वैर उभर आ उसने भगवान् से बदला लेना चाहा। (पूर्वजन्म में यह नागकुमार एक सिंह और भगवान् ने अपने पूर्वजन्म में जब वे वासुदेव थे, तब उस सिंह को म था।) आवेग बढ़ा। नागकुमार देव ने नदी में संवर्तक वायु की विकुर्वणा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

का को उलटना चाहा, परन्तु उसका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। कम्बल बल नामक नागकुमार देव वहां आए। सुन्द्रष्टा को उपसर्ग करने से रोका। विधि नदी को पार कर भगवान् नौका से उतरे। ईर्यापथ का प्रतिक्रमण कर गे चले।

१०. चार प्रकार के पुरुष

भगवान् ने कहाह्नदेवानुप्रियो! मनुष्य चार प्रकार के होते हैंःह्न

१. उदितह्नउदित

२. उदितह्नअस्तमित

३. अस्तमितह्नउदित

४. अस्तमितह्नअस्तमित

जिनका जीवन प्रारंभ से अन्त तक उदित रहता है वे **उदित-उदित** हैं। ेह्नभरत चक्रवर्त्ती।

भरत ने अपने जीवन के प्रारंभ में चक्रवर्ती के सुख भोगे, इसलिए का जीवन उदित था और अन्त में भावना की पवित्रता से वे मुक्त हुए, तः अंत में भी वे उदित ही रहे। इस प्रकार वे उदित-उदित थे।

जिनका जीवन प्रारंभ में उदित रहता है और अन्त में अस्तमित हो ता है, वे उदित-अस्तमित हैं। जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती।

ब्रह्मदत्त ने जीवन के प्रारंभ में चक्रवर्त्ती के सुख भोगे, किन्तु अन्ततः क में जाना पड़ा। अतः वह उदित-अस्तमित था।

जिनका जीवन प्रारंभ में अस्तमित रहता है और अन्त में उदित हो ता है, वे अस्तमित-उदित हैं। जैसेह्नहरिकेशी चाण्डाल।

हरिकेशी जन्मना चाण्डाल थे। इसलिए उनका जीवन प्रारंभ से स्तमित था। परन्तु बाद में भागवती दीक्षा ग्रहणकर वे मुक्त हुए। तब का जीवन उदित हुआ। इस तरह वे अस्तमित-उदित थे।

चत्तारि पुरिसजायाह्न
उदितोदिते णाममेगे, उदितत्थमिते णाममेगे।
अत्थमितोदिते णाममेगे, अत्थमितत्थमिते णाममेगे।। (ठाणं ४।३६३)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जिनका जीवन प्रारंभ में अस्तमित रहता है और अन्त में भी अस्त
हो जाता है, वे अस्तमित-अस्तमित हैं। जैसे कालसौकरिक कसाई।

कालसौकरिक प्रारंभ से ही कसाई का कार्य करता था और मरने
पश्चात् नरक में गया। अतः वह अस्तमित-अस्तमित था।

११. विष क्या है?

भगवान् विहार करते-करते चम्पापुरी आ पहुंचे। धर्म-देशना समाप्त
चुकी थी। एक जिज्ञासु श्रमणोपासक ने पूछाः'आर्यदेव! साधु के लिए
क्या है?'

भगवान् ने कहाः'विभूषा, स्त्री-संसर्ग और प्रणीतरस का भोजन
विष है।

विभूषा से काम, काम से सम्मोह और सम्मोह से ज्ञान का नाश हो
है।

स्त्री-संसर्ग ब्रह्मचर्य का घातक है। ब्रह्मचर्य के नाश से चरित्र का न
होता है और चरित्र नष्ट होते ही सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है।

प्रणीतरस के भोजन से विकार उत्पन्न होता है। ज्यों-ज्यों सरस आ
खाया जाता है, त्यों-त्यों लोलुपता बढ़ती हैः गृद्धि से अब्रह्मचर्य-सेवन
भावना बनती है और अब्रह्मचर्य सेवन से सर्वनाश हो जाता है।

विभूषा, स्त्री-संसर्ग और प्रणीतरस भोजन ऐसा विष है, जो केवल
ही जन्म में नहीं, जन्म-जन्मान्तर तक अपना प्रभाव दिखाता हैः मारता
हैः यह तालपुट विष है।[१]

१२. काम-राग-निवारण का उपाय

भगवान् महावीर राजगृह के उपनगर नालन्दा में समवसृत थे। शहर
बहिर्मार्ग के उद्यान में धर्मदेशना का प्रबंध था। हजारों धर्मानुरागर

१. **विभूसा इत्थिसंसग्गी पणीयरसभोयणं।**
नरस्सत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा।। (दशवैकालिक ८।५६)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ोपासक निर्ग्रन्थ-प्रवचन को सुन अपने-अपने आवासों की ओर लौट चुके साधुओं की परिषद् जुड़ी। सभी जिज्ञासुओं के लिए समाधान का मात्र केन्द्र निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र ही तो थे। एक श्रमण ने आगे आ, विधिवत् दन कर, बद्धांजलि हो पूछाह्नदेवाधिदेव! हमने संयम-जीवन ग्रहण किया महाव्रतों का आजीवन पालन करना हमारा संकल्प है। परन्तु जन-सम्पर्क अन्यान्य कारणों से यदि मन संयम से बाहर निकल जाए तो हम क्या ? काम-राग-निवारण का सफल उपाय क्या है? यही जिज्ञासा है हमारी।

भगवान् ने कहाह्नकाम-राग-निवारण के लिए भेद-ज्ञान का आलम्बन । यह सोचो **'न सा महं नोवि अहं पि तीसे' (दशवै. २।४)**ह्नवह मेरी नहीं और न मैं ही उसका हूं।' आतापना लो, कष्ट-सहिष्णु बनो, सुकुमारता छोड़ो, कामनाओं का अतिक्रमण करो, दोषों को छेद डालो, राग-द्वेष को ड़ दोह्नयही काम-राग के निवारण का उत्तम मार्ग है।[१]

१३. श्रुत क्यों?

भगवान् महावीर से पूछा गयाह्नभगवन्! श्रुत क्यों सीखना चाहिए?

भगवान् ने कहाह्नआयुष्मन्! पांच कारणों से श्रुत सीखना चाहिए[२]ह्न **) ज्ञान के लिए, (२) दर्शन के लिए, (३) चारित्र के लिए, (४) कदाग्रह अन्त करने के लिए और (५) यथार्थ भावों को जानने के लिए।**

आयुष्मन्!

ज्ञान से हेय और उपादेय का विवेक होता है।

दर्शन से श्रद्धा दृढ़ होती है।

चारित्र से प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास होता है।

कदाग्रह का अन्त करने से समभाव की वृत्ति पनपती है।

यथार्थ भावों को जानने से गन्तव्य-पथ प्रशस्त हो जाता है।

आयावयाही चय सोउमल्लं, कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए।।(दशवैकालिक २।५)

पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं सिक्खेज्जाह्नणाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, वुग्गहविमोयणट्ठयाए, अहत्थे वा भावे जाणिस्सामीतिकट्टु। (ठाणं ५।२२४)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१४. श्रुत की वाचना

एक व्यक्ति जिज्ञासाओं से भरे हृदय को लेकर गुरु के पास आया अ
गुरु से श्रुत की वाचना देने के लिए प्रार्थना की। गुरु ने कहाह्न

आयुष्मन्! श्रुत की वाचना हर एक व्यक्ति को नहीं दी जा सक
इसके लिए पात्रता चाहिए।

भगवन्! यह कैसे?

आयुष्मन्! चार व्यक्ति वाचना पाने के योग्य नहीं होते।[१]

वे कौन से भगवन्?

आयुष्मन्! जो अविनीत हो।

जो विकृतिप्रतिबद्ध हो।

जो कलह को उपशान्त करने वाला न हो।

जो मायावी हो।

भगवन्! श्रुत की वाचना पाने के योग्य कौन हैं?

आयुष्मन्! जो विनीत हो।

जो विकृतिप्रतिबद्ध न हो।

जो कलह को उपशांत करने वाला हो।

जो अमायावी हो।[२]

१५. पलिमंथु

किसी ने भगवान् महावीर से पूछाह्नभगवन्! पलिमंथु (विरोध) कि
प्रकार के होते हैं?

भगवान् ने कहाह्नआयुष्मन्! पलिमंथु छह प्रकार का होता हैह्न

१. कुचेष्टाह्नप्रमाद।

२. मुखरता।

३. चक्षु की लोलुपता।

---

१. चत्तारि अवायणिज्जा पण्णत्ता, तं जहाह्नअविणीए, विगइपडिब
अविओसवितपाहुडे, माई। (ठाणं ४।४५२)

२. चत्तारि वायणिज्जा पण्णत्ता, तं जहाह्नविणीते, अविगतिपडिब
विओसवितपाहुडे, अमाई। (ठाणं ४।४५३)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४. तिन्तिनिकता।

५. अतिलोभ।

६. भिद्या-निदानकरण।

आयुष्मन्!

कुचेष्टा संयम का पलिमंथु है।

मुखरता सत्य-वचन का पलिमंथु है।

चक्षु की लोलुपता ईर्यापथिक का पलिमंथु है।

तिन्तिनिकता भिक्षा की एषणा गोचर का पलिमंथु है।

अतिलोभ मोक्ष मार्ग का पलिमंथु है।

भिद्या-निदानकरण मोक्षमार्ग का पलिमंथु है।[1]

१६. अहिंसा : व्यावहारिक और पारमार्थिक पहलू

राजगृह से विहार कर भगवान् महावीर चम्पापुरी पधारे। संघ के बहुत साधु-साध्वी वहां एकत्रित थे। सभी जिज्ञासु मुमुक्षु अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान पा रहे थे। एक नवदीक्षित साधु ने विनम्रता से पूछाह्नआर्यदेव! हिंसा क्या है?

आर्य! **'सव्वभूएसु संजमो' (दशवै. ६।८)**ह्नप्राणी मात्र में संयम-समता ना ही अहिंसा है।

भगवन्! अहिंसा क्यों? इसका व्यावहारिक पक्ष क्या है?

आर्य! सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता[2]। यही हिंसा का व्यावहारिक पक्ष है।

भगवन्! अहिंसा का पारमार्थिक पहलू क्या है?

आर्य! हिंसा से आत्मा का घात होता है, पतन होता है। इसीलिए

छ कप्पस्स पलिमंथु पण्णत्ता तं जहाह्नकोकुइते संजमस्स पलिमंथू, मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू, चक्खुलोलुए ईरियावहियाए पलिमंथू, तिंतिणिए एसणागोयस्स पलिमंथू, इच्छालोभिते मोत्तिमग्गस्स पलिमंथू, भिज्जाणिदाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमंथू। (ठाणं ६।१०२)

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं। (दसवै. ६।१०)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अहिंसा का पालन अनिवार्य हैह्वयही इसका पारमार्थिक पहलू है।

भगवान् महावीर राजगृह में समवसृत थे। हजारों व्यक्ति दर्शनार्थ आ
जा रहे थे। एक परिव्राजक ने पूछाह्वभगवन्! साधु का स्वरूप क्या है?

भगवान् ने कहाह्वआर्य! जो मोक्षाभिलाषी है, जिसकी समस्त कामन
मिट चुकी हैं, वह साधु है।

भगवन्! यह ठीक है। दीक्षित होने वाले मोक्षाभिलाषी होते
हैंह्वउनकी कामनाएं भी अल्प होती हैं। तो क्या गृह-त्याग करने वाले स
साधु ही हैं?

आर्य! ऐसा नहीं है। जो सम्यग् ज्ञान और दर्शन के धारक हैं,
संयम और तपस्या में निरन्तर रत रहते हैं, वे ही सही अर्थ में साधु
असाधु को साधु मानना मिथ्यात्व है, पाप है।

भगवान् चले जा रहे थेह्वउग्र विहार उनके जीवन का एक अंग थ
चिलचिलाती धूप में शिष्यों के कण्ठ सूख रहे थे। सभी तितिक्षा से आगे
रहे थे। रास्ते में दाहिने पार्श्व में एक तालाब दीखा। पानी की लहरें दो
तटों के बीच टकराकर अनन्त में विलीन हो जाती थीं।

एक शिष्य ने पूछाह्वभगवन्! यह पानी सजीव (सचित्त) है या निर्ज
(अचित्त)?

भगवान् अनन्त-ज्ञानी थे। वे सब कुछ जानते थे। उन्होंने कहाह्वआ
यह पानी निर्जीव है।

भगवन्! इसे हम पी लें?

नहीं! मेरी आज्ञा नहीं है।

ऐसा क्यों?

भगवान्ह्वशिष्यो! तुम जानते नहीं, आज यदि मैं तुम्हें इस पानी
पीने की आज्ञा देता हूं, तो भविष्य के लिए यह एक नई परम्परा
जायेगी। अनागत काल के साधु-साध्वी इसका प्रयोग करने लगेंगे। छद्मस्थ
के कारण वे सजीव और निर्जीव का भेद नहीं कर सकेंगे। इस अनर्थ से ब
के लिए ही मैं तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकता।

शिष्यों ने 'तहत वचन' कहकर आज्ञा शिरोधार्य की।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उन दिनों ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर राजगृह के उद्यान में स्थित थे। चन समाप्त हो चुका था। शिष्य गांव के अनेक पाड़ों में से भिक्षा लेकर ट आए थे। एक शिष्य ने भगवान् को वन्दन कर बद्धांजलि हो, ाह्वभगवन्! हम शहर में जाते हैं। सामुदायिक भिक्षा के निमित्त हम ावच घरों में भिक्षा के लिए घूमते हैं। वहां राजा, राजामात्य (मंत्री, ापति आदि), सेठ आदि हमसे हमारा आचार गोचर पूछते हैंह्वउन्हें हम ा उत्तर दें?

आर्य! निर्ग्रन्थ प्रवचन विनय मूल है। प्रवचन की लघुतादि की ावना के कारण जहां-तहां खड़े रहकर गृहस्थों से संभाषण की आज्ञा नहीं गुरु या स्थविर जहां स्थिर हों, वहीं पर समाधान ढूंढने को उन्हें कहना हिए।

१७. चार कारण

जिज्ञासा का धागा जब तक टूट नहीं जाता, तब तक विकास का मार्ग तिबंध रहता है। जिज्ञासा और समाधान दोनों चेतनाशील प्राणी के त्म-गुण हैं।

तब गौतम ने पूछाह्वभगवन्! जीव-नरक में क्यों जाता है?

भगवान् ने कहाह्वआयुष्मन्! नरक में जाने के चार कारण महाआरम्भ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय का वध और मांस भक्षण।[१]

भगवन्! जीव तिर्यंचयोनि में क्यों जन्म लेता है?

आयुष्मन्! तिर्यंचयोनि में जन्म लेने के चार कारण हैंह्वमाया, कपट, त्य और कूटतोल-कूटमाप।[२]

भगवन्! जीव मनुष्ययोनि में क्यों जन्म लेता है?

---

१ चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयाह्वउयत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहाह्वमहारंभताए, महापरिग्गहयाए, पंचिदियवहेणं, कुणिमाहारेणं। (ठाणं ४।६२८)

२ चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्ख-जोणिय (आउय?) त्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहाह्वमाइल्लताए, णियडिल्लताए, अलियवयणेणं, कूडतुलकूडमाणेणं। (ठाणं ४।६२९)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आयुष्मन्! मनुष्ययोनि में जन्म लेने के चार कारण हैंह्नप्रकृति भद्रता, विनय, दया और अमत्सरता।[१]

भगवन्! जीव देवयोनि में क्यों जन्म लेते हैं?

आयुष्मन्! देवयोनि में जन्म लेने के चार कारण हैंह्नसरागसंयम, संय असंयम, बालतप, और अकाम निर्जरा।[२]

१८. जं सेयं तं समायरे

भगवान् श्रावस्ती नगरी के 'चम्पक' उद्यान में ठहरे हुए थे। नगर कुछ सम्भ्रान्त श्रमणोपासक भगवान् से धर्म-चर्चा करने आए। भगवान् पूछाह्न'नायपुत्त! संसार वादों का अखाड़ा है। वर्तमान में जो छह तीर्थ विद्यमान हैं वे अपने-अपने सिद्धांतों को ही सत्य मानते हैं और उसी कल्याण होगा ऐसा कहते हैं। भगवन्! ऐसी अवस्था में हम क्या करें? कि पकड़ें, किसे छोडें? हम असमंजस में हैं।

भगवान् ने कहाह्नदेवानुप्रियो! धर्म वाद में नहीं हैह्नवह तो आत स्वभाव हैह्न**'विवेगे धम्मं माहियं'** अर्थात् धर्म विवेक में है, सोचो, समझ **'जं सेयं तं समायरे' (दशवै. ४।११)** जो अच्छा लगे, जो सत्य है, श्रेयस है, उसका आचरण करो।

यह अनाग्रह का सर्वोत्कृष्ट कथन है। सत्य अनन्त हैह्नउसका स कथन अशक्यानुष्ठान है। जीवन क्षणभंगुर हैह्नसीमित हैह्न**'जं सेयं तं समा** जो श्रेयस्कर हैह्नमोक्षाभिमुख हैह्नउसी का आचरण करो।

---

३. **चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्साह्नउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहाह्नपगतिभद्दत पगतिविणीययाए, साणुक्कोसयाए, अमच्छरिताए। (ठाणं ४।६३०)**

१. **चउहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहाह्नसरागसंजमे संजमासंजमेणं, बालतवोकम्मेणं, अकामणिज्जराए। (ठाणं ४।६३१)**

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१९. गौतम की जिज्ञासा : समाधान भगवान का

गौतम गणधर ने पूछाह्णभंते! दुःख क्या है? सुख क्या है? मोक्ष क्या मोक्ष के साधन क्या हैं?

भगवान् ने कहाह्ण**भो! 'जे पावे कम्मे कड़े कज्जई, कज्जिसई से**'ह्णपाप-कर्म ही दुःख हैह्णजो पाप-कर्म अतीत में किए गए थे, वर्तमान में ते हैं और भविष्य में करेंगेह्णयही दुःख है। कर्म भव-भ्रमण का हेतु है। -भ्रमण दुःख है। जो परापेक्ष सुख है, वह दुःख है।

भगवान् ने कहाह्णभो! '**जे निज्जिण्णे से सुहे**'ह्णजो निर्जरण कर्मों का क्षय वही सुख है। कर्म-निर्जरण आत्म-विशुद्धि है। आत्म-विशुद्धि शाश्वत ख है। जो आत्म-सापेक्ष सुख है, वही सुख है।

भगवान् ने कहाह्णभो! '**संति मोक्खं**'ह्णशान्ति मोक्ष है। शान्ति आत्मौपम्य द्धि का फल है। उसका उद्गम स्थान आत्मा है। शान्ति आत्म-स्वभाव इसकी उत्पत्ति की कल्पना व्यवहार मात्र है। यह अतीन्द्रिय है।

भगवान् ने कहाह्णभो! '**विज्जया चेव चरणेण चेव**'ह्णमोक्ष के दो साधन विद्या-ज्ञान और चरण-क्रिया। हेय-उपादेय को जानने का साधन ज्ञान है। न तभी फलवान बनता है, जब वह क्रियान्वित होता है। क्रिया शून्य ज्ञान ज्ञान-शून्य क्रिया विशेष फलवती नहीं होती है।

न और क्रिया

दो परिव्राजक भगवान् महावीर के पास आए। एक ज्ञानवादी था, दूसरा यावादी। दोनों में विवाद था। एक ज्ञान को ही मोक्ष का साधन मानता दूसरा क्रिया को ही। दोनों एकान्तवादी थे। ज्ञानवादी ने कहाह्ण

विज्ञप्तिः फलदा पुंसां, न क्रिया फलदा मता।
मिथ्याज्ञानात् प्रवृत्तस्य, फलप्राप्ते रसं भवात्।।
(आचा., वृत्तिपत्र २८७)

क्रियावादी ने कहाह्णनहीं-नहीं, यह मिथ्यावाद है, क्रिया ही सर्व-फल-धिका हैह्ण

क्रियैव फलदा पुंसां, न ज्ञानं फलदं मतम्।
यतः स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखितो भवेत्।।
(आचा., वृत्तिपत्र २८७)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भगवान् ने मुस्कराते हुए कहाह्नभो! आप दोनों एकान्तवादी
एकान्तवाद पूर्ण सत्य तक नहीं पहुंचता। वह तो केवल उसके अंचल म
को छूकर ही रह जाता है। एकान्तवाद से मिथ्याभिनिवेश आता है। आंशि
सत्य की अपेक्षा से तुम दोनों सत्य हो और पूर्ण सत्य की दृष्टि से दो
मिथ्या हो। दोनों का समन्वित रूप ही सत्य है।

मैं कहता हूंह्न**'विज्जाचरणं पमोक्खं' (सूत्रकृ. १।१२।११)**ह्नज्ञान औ
क्रिया दोनों के समन्वय से मोक्ष होता है। न तो केवल ज्ञान से ही, न केव
क्रिया से ही मोक्ष मिल सकता है। **'अप्पणा सच्च मेसेज्जा, मेत्तिं भू
कप्पए'**ह्नयह ज्ञान और क्रिया का चिन्तन-सूत्र है, उनको जोड़ने वाली क
है, ज्ञान से जानो और क्रिया से हेय को छोड़ो, उपादेय को ग्रहण करो।

दोनों परिव्राजक परम तुष्ट हो **'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः'** कहते हुए अप
अपने आश्रम की ओर चले गए।

बन्धन-मुक्ति का मार्ग

गणधर गौतम भगवान् महावीर के अनन्य भक्तह्नअन्तेवासी शिष्य
वे प्रश्न करते और भगवान् स्वयं उसका समाधान करते। गुरु-शिष्य
संवाद अन्य सभी निर्ग्रन्थों के लिए उत्कृष्ट पाथेय बन जाता। वही उ
संयम जीवन का संबल रहता। उसके सहारे वे आत्म-साधना करते
आगे चरण उठाते हुए परम पद को प्राप्त हो जाते। ज्ञान का सार उस
आचरण में है।

गौतम स्वामी ने पूछाह्नभंते! बन्धन क्या है? और बन्धनमुक्ति
उपाय क्या है?

भगवान् ने कहाह्नदुःख ही बन्धन है। राग-द्वेष कर्म के बीज हैं। व
मोह से उत्पन्न होते हैं, भव-भ्रमणह्नजन्म-मरण का हेतु कर्म हैह्नजन्म-मरण
दुःख है।

पदार्थासक्ति से मोह पैदा होता है, मोह से स्नेह पैदा होता है, स्नेह
राग बढ़ता है, राग से द्वेष बढ़ता है, राग-द्वेष से बन्धन बढ़ता हैह्नयह च
चलता ही रहता है, जब तक कर्मों का अन्त नहीं हो जाता। बन्धन-मु
का मार्ग है वीतराग भाव। **'सिणेहिं असिणेहकर'**ह्नयह वीतराग भाव
स्वरूप है। जो स्नेह करने वालों में भी अस्नेहशील रहता है वह वीतराग

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अति कठिन हैह्वद्वेष करने वालों पर द्वेष न किया जाए यह कठिन होते भी दुःसाध्य नहीं है। राग करने वालों पर राग न किया जाए यह परम साध्य है।

दुःख-मुक्त कौन है? जो दोष-मुक्त है।

दोष-मुक्त कौन है? जो स्नेह-मुक्त है।

स्नेह-मुक्त कौन है? जो मोह-मुक्त है।

मोह-मुक्त कौन है? जो संयोग-मुक्त हैह्ववीतराग है।

राग-द्वेष बन्धन है और वीतराग भाव बन्धन-मुक्ति का साधन।

शोधी के स्थान

वैशाली के लोगों में आज अपार हर्ष था। भगवान् के पदार्पण की बात नगर में फैल गई। लोग स्नानादि से निवृत्त हो, नये-नये परिधान व लंकारों से सुसज्जित हो गांव से दूर भगवान् के स्वागत के लिए गए। -विहार करते हुए भगवान् महावीर अपने शिष्यों सहित लोगों का भिवादन स्वीकार करते हुए 'गुणशील' उद्यान में ठहरे। प्रवचनोपरान्त एक ज्ञासु श्रमणोपासक ने पूछाह्व'भगवन्! विशोधी के स्थान कौन-कौन-से ' भगवान् ने कहाह्व'**लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य**'ह्वये चारों क्षाभिलाषी के लिए विशोधी-स्थान हैं।

लज्जा, पापभीरुता से व्यक्ति सबल बनता है। सबल व्यक्ति में ध्यात्म-भावना का जागरण होता हैह्वअध्यात्म भावों से समता का ीकरण और मोक्षाभिमुखता आती है।

दया से आत्म-रक्षा का भाव प्रबल बनता हैह्वसर्वभूतात्म भूत की वना का विकास होता है।

सभी जीवों में स्वात्मत्व का दर्शन 'संयम' की ओर प्रेरित करता है। म से निग्रह बढ़ता है और निग्रह से पर कल्पित दुःख नहीं होते।

निग्रह का उत्कर्ष हैह्वब्रह्मचर्य। वीर्य-धारण से कष्ट सहने की क्षमता ती हैह्वब्रह्मचर्य का असर शरीर पर होता हैह्वयह ऐकान्तिक सत्य है; चर्य से आत्मोन्मुखता का विकास होता है, यह सार्वभौम सत्य है।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org